एकजुटता में स्वतंत्रता

दक्षिण एशिया में शांति के लिए मीडिया का प्रयास

United States Institute of Peace

अंतर्वस्तु

प्रस्तावना 1

बांग्लादेशः राजनीतिक ध्रुवीकरण को मिल रहा बढ़ावा मीडिया की भागीदारी से 6
अमर देश केस से

भारतः मजबूत नींव के बावजूद भी समस्यायें बनी रहती हैं 14
मणीपुरः मीडिया के स्वायत्ता की सुरक्षा

नेपालः एक नए लोकतंत्र की रक्षा 23
मिशन जान बचावो
बड़े भाई का लंबा हाथ

पाकिस्तानः तनाव में पत्रकारिता 30
मीडिया पे वार
प्रेस क्लबः मीडिया समुदाय के लिए एक मंच

श्रीलंकाः युद्ध के बाद की चुनौतियां 39
तीसैनियागम की सजा
मावबिमाः सभी के लिए रिपोर्ट की मांग ही लक्ष्य

यह दस्तावेज पत्रकारों के अंतर्राष्ट्रीय महासंघ (आईएफजे) सहयोगियों और सहयोगी कंपनियो द्वारा तैयार किया गया है

अखिल भारतीय न्यूजपेपर कर्मचारी महासंघ
मणीपुर के सभी कार्यकारी पत्रकार संघ
बांग्लादेश फ्रीडम वॉच
बांग्लादेश मानवाधिकार संगबधिक फोरम
छत्तीसगढ़ी श्रमजीवी पत्रकार संघ
ढाका पत्रकार एकता
दिल्ली यूनीयन ऑफ जर्नलिस्ट
ट्रेड यूनियन मीडिया कर्मचारी महासघ श्रीलंका
नेपाली जर्नलिस्ट महासंघ
मीडिया का स्वतंत्रता आंदोलन, श्रीलंका
भारतीय जर्नलिस्ट संघ
कश्मीर प्रेस गिल्ड
मासलाइन मीडिया सेंटर, बांग्लादेश
मीडिया वॉच बांग्लादेश
पत्रकार राष्ट्रीय संघ, भारत
पत्रकार राष्ट्रीय संघ, नेपाल
नेपाल प्रेस संघ
पाकिस्तानी प्रेस फाउंडेशन
पाक फेडरल यूनियन ऑफ जर्नलिस्ट
श्रीलंका कर्मचारी पत्रकार संगठन

एकजुटता में स्वतंत्रताः दक्षिण एशिया में शांति के लिए मीडिया का प्रयास

संकल्पना, शोध और लेखन
सुकुमार मुरलीधरन, लक्ष्मी मूर्ति,जैक्यूलीन पार्क

संपादनः
देबोराह मौर, क्लैरे ओ रूरकी

विशेष धन्यवादः
मजहर अब्बास
खुर्शीद अब्बासी
गोविंद आचार्य
यूसुफ अली
टंका आर्यल
सूरज भटार्य
भारत भूषण
सुजात बुखारी
रामजी दहल
तारानाथ दहल
सुनंदा देशप्रिया
मुहम्मद फारूक
हाना इब्राहीम
धर्मेन्द्र झा
पोशन केसी
तारीक महमुद
कंचन मारासिंघहे
कामरूल हसन मोंजू
समशूल इस्लाम नाज
विष्णु निस्थुरी
ऐके पांडे
प्रदीप फनौबम
सुभापति सेमोम
परवेज शौकत
राय हुसैन ताहीर
के के वासुदेवन

रूपरेखा और मुद्रणः इम्पलसिव क्रियेशन

अंतराष्ट्रीय पत्रकार महासंघ (आईएफजे) एशिया पेसफिक द्वारा प्रकाशित. प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इस प्रकाशन का कोई भी भाग प्रकाशित नहीं किया जा सकता. इस किताब के विषय–वस्तु का कापीराइट केवल इसके लेखक के पास है. इसके प्रकाशन में योगदान हेतु आप को लेखक से अनुमति लेना पड़ेगा.

यह दस्तावेज यूनिटेड स्टेट इंटिट्यूट ऑफ पीस (यूएसआईपी) के सहयोग से बनाया गया. इसमें दिए गए दृष्टिकोण और विषय–वस्तु सब कुछ आईएफजे के हैं इसलिए इसे यूएसआईपी का ऑफिसीयल मत नहीं समझा जाना चाहिए

बोल, के लब्ज आजाद हैं तेरे
बोल, के जबान अब तक तेरी हैं,
यह पूरा जीस्म है तेरा–
बोल की जान अब तक तेरी है।

देख के अंगार के दुकान में,
तेज हैं शोले, सुरख लाल है इस्पात,
खुलने लगे कुफलोन के दाने–
फैला हर एक जंजीर का दाना।

बोल ये थोड़ा वक्त बहुत है,
जिस्मों–जबान के मौत से पहले,
बोल के सच जिंदा है अब तक–
बोल जो कुछ कह ले।

फैज अहमद फेज, अनुवादित– वी जी कैरनन

साउथ एशिया की मीडिया वहां के इलाकों में हो रहे संवेगी बदलावों के मुश्किल कार्यों में व्यस्त क्रवहां के सभी देशों को संक्रमित समाज के रूप में उल्लेखित किया जा सकता है जिन पांच देशों के बारे में इस रिपोर्ट में बात की जा रही हैं वे कुछ विशेष बातों में एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी कुछ तत्वों में समानता रखते हैं।

इस रिपोर्ट में उस खोज का परिणाम है जो अंतरराष्ट्रीय पत्रकार फेडरेशन द्वारा अपने साथियों से कराई गई है जो पत्रकारों की भूमिका और उनके समूह में काम करने पर केंद्रित है जबकि उनके पास आजादी की कमी हो ऐसे कई केस हैं जिनमें विरोधी परिस्थितियों में पत्रकरों ने समूह में सफतलापूरवक काम किया है लेकिन इसी तरह ऐसे भी उदाहरण हैं जिनमें सामूहिक कार्य के चलते अपने लक्ष्य को हासिल करने में असफल रहे हैं इस खोज में ऐसी ही कई घटनाओं को लेकर कुछ नीतियां विकसित की जा रहीं हैं जो विपरीत परिस्थितियों में मीडिया की आजादी पर आधारित है।

इस क्षेत्र में भारत एक ऐसा देश है जहां का राजनीतिक तंत्र पूरी तरह से सभी पार्टियों और संस्थाओं के बड़े सामंजस्य के सहारे खड़ी है। मगर भारत की अर्थव्यवस्था जोकि विश्वव्यापक गण में बड़े स्तर पर उभरी है, वो सार्थक ढांचागत रूपांतरण और कई तरह के बड़े अवसरों और लगभग सभी वर्गों के माध्यम से खतरे का बोध करते हुए आगे बढ़ती है हालांकि अर्थव्यवस्था के मामले में भारत एक बड़ा केंद्र है मगर सुरक्षा की फिक्र को लेकर इसके पड़ो सी देशों से रिश्ते खराब होने के कारण भारत को अपनी इस शक्ति का एहसास नहीं है भारत के जम्मू–कश्मीर राज्य में लगातार तनाव की स्थिति बढ़ती जा रही है भारत के उत्तरी पूर्व और मध्य के राज्यों में कई तरह के बागी वर्ग प्रचलित हैं जिनके चलते लगभग हर रोज सुरक्षाबल और पांच राज्यों में फैले माओवादियों से मुठभेड़ होती है इसी तरह की परिस्थितियां पत्रकारों के लिए चुनौतीपूर्ण होती हैं और जिनके चलते उनकी जिम्मेदारी और बढ़ जाती है साउस एशिये के कुछ देश ऐसे हैं जो जटिल और बहुआयामी राजनीतिक उतार–चढ़ाव से गुजर रहे हैं पाकिस्तान और नेपाल में सन् 2008 में देशव्यापी चुनाव हुए जिनमें सरकारी तंत्र में बदलाव की बातें कही गई, और इन देशों में गठबंधन में पत्रकार समूह की मुख्य भूमिक रही जिसने राजनीति और शासन प्रणाली में काफी बदलाव किए जिसमें एक तरफ फौजदारी और दूसरी तरफ राजकीय शासन को एक तरफ कर लोकतांत्रिक बल को राजनीतिक केंद्र पर अधिकार दिलाया।

नेपाल में चुनी गई नई चुनावी एसेंबली मई 2010 तक अपने गणतांत्रिक संविधान के वादे को पूरा करने में नाकाम रही है दो विरोधी सरकारों ने परस्पर बातचीत से सामंजस्य बनाकर कुर्सी हासिल की सभी पार्टियों ने समझौता किया कि आपसी सामंजस्य् से शासन प्रणाली और संविधान लिखा जाएगा लेकिन चुनाव के तुरंत बाद इन सभी बातों का उल्लंघन कर दिया गया और 2008 के ऐतिहासिक राष्ट्रीय चुनाव और दूसरी तरफ सरकार के इस्तीफे के बाद अगली सरकार के लिए नेपाल को लंबा इंतजार करना पड़ा।

पाकिस्तान को 2007 में सरकार चुनने के लिए लंबे संघर्ष से गुजरना पड़ा पाकिस्तान पीपल्स पार्टी की गठबंधन की सरकार ने कई ऐसे बुरे कानून को हटाने की कोशिश की जोकि फौजी शासन के द्वारा बनाए गए थे मगर ये भी विश्वव्यापी राजनीतिक समीकरणों के बीच लड़खड़ाती रही पाकिस्तान की किस्मत भी उसके दो पड़ोसी देशों भारत और अफगानिस्तान के साथ जुडी है अफगानिस्तान की आज की परिस्थिति पाकिस्तान पर एक बड़ी परछाई डालती है पाकिस्तान के खैबर पख्तून्वा (पहले नोर्थ वेस्ट फ्रोंटिएर प्रोविंस), कबीलियाई इलाकों और बलोचिस्तान में अक्सर संघीय सरकार के आदेश को धता बता देने वाले अफगान तालिबान लड़ाकों की घनी आबादी की वजह से देश के पश्तून और बलोच क्षेत्र अशांत हैं। इससे अस्थिरता में बढ़ोत्तरी होती है वेतन,सुरक्षा और कार्य परिस्थिति को लेकर पत्रकारों का संघर्ष लगातार जारी रहा है इनमें सार्थक सफलता भी मिली है मगर बड़े मीडिया संस्थान इनके समर्थन में इत्याही नही रहे जैसा कि नेपाल में अन्य सिविल समाज के साथ व्यापक गठबंधन ने लोकतांत्रिक बहाली के लिए आंदोलन चलाया जिसमें उनको उल्लेखनीय सफलता मिली और इसके बाद जब इसके जरिए लक्ष्य की प्राप्ति हो गई तो ये आगे बढने लगा।

श्रीलंका में लंबे समय तक चले वैधानिक युद्ध ने मीडिया और वैधानिक समाज के बीच गहरी खटास पैदा कर दी इस संघर्ष के बुरे दिनों में काफी उल्लेखनीय प्रयास किए गए जिससे पत्रकरों के अधिकारों का दावा किया जा सके कि वो सांप्रदायिक पहचान के निरपेक्ष जो देखें उसे रिपोर्ट कर सकें सन् 2002 में वर्ग संघर्ष के लिए दोनें पक्षों द्वारा किए गए युद्विराम की घोषणा ने पत्रकरों को नए अवसर प्रदान किए जिससे वो अपने सामूहिक संगठन का निर्माण कर सकें और क्रास सांप्रदायक विरोधी अभियान के लिए प्लेटफार्म तैयार कर सकें लेकिन राज्य स्वामीत्व मीडिया के सुधार के लिए किए गए प्रयास में थोड़ी सफलता मिली, जबकि राजनीतिक व्यवस्था के स्टेकहोल्डरों ने इस क्षेत्र को कार्यवाही करने के लिए प्राथमिक रूप में मान्यता दी सन् 2006 में जब सिविल युद्ध नए मामलों के साथ शुरू हुआ तब पत्रकारों ने सामूहिक

दक्षिण एशिया में पत्रकारों पर हर समय शारिरीक हमला होने का भय बना रहता है और साधारणतया पेशावर के प्रेस क्लब में मानव बम के द्वारा हत्या और हिंसा की खबरे घटती रहती हैं। उन्हें जीवनयापन करने के लिए में जद्दोजहद करनी पड़ती है और अक्सर वो अपने अधिकारों को पाने के लिए और काम की अच्छी परिस्थिति के लिए सड़कों पर धरना देने उतरते हैं।

कार्यवाही कर अनुकूल माहोल तैयार किया जिससे वो स्वतंत्र और उचित पत्रकारकिता कर सकें मीडिया मालिकों की उदासीनता और सरकार की ''हमारे साथ या हमारे खिलाफ'' दृष्टिकोण में सहयोजित होने की इच्छाशक्ति और नवीकृत युद्ध स्थिति के दौरान राज्य स्वामीत्व मीडिया का हठी प्रचार उनके लिए विकट बाधाएं थीं।

मीडिया दमन के नए परिवेश में पत्रकरा निकाय कमजोर सिद्ध हुए, विशेषकर इसलिए क्योंकि उनके कई प्रमुख नेता लक्षित थे और मौन रखने या देर से निकलने को मजबूर थे इस तरह श्रीलंका के अनुभव साउथ एशिया के पत्रकार निकाय के लिए बहुमूल्य सबक बनकर साकार हुए।

लगभग दो वर्ष के बाद सैनिकीय दंडाधिकारी प्रशासन के अधीन, बंग्लादेश ने 2009 में निर्वाचित सरकार में परिवर्तन किया राजनीतिक के परंपरागत क्रियान्वन के चलते उस दौरान आपात शासन में मुश्किलें आ रहीं थी दोनों ही प्रमुख पार्टिया विभिन्न स्तरों पर अपने नेतृत्व के कैद होने के चलते गैर–कार्यात्मक प्रस्तुत हो रही थीं हालांकि राष्ट्रीय संसद के लिए चुनाव अनुसूची की औपचारिक घोषणा के साथ ये फिर से जीवित हुईं लेकिन जब से चुनाव हुए हैं, जिसमें आवामी लीग को निर्णायक बहुमत मिला, दोनों मुख्य पार्टियों की कटुता और न्यायपालिका एवं चुनाव आयोग जैसी प्रमुख संस्थाओं की कार्यपद्धति को लेकर मतभेद के चलते नागरिक संगठन और मीडिया बंट गए थे इसी बीच, देश के पहले प्रधानमंत्री शेख मुजीबुर रहमान के पांच हतियारों को फांसी देने के बाद 1971 के राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के दौरान अपराधी युद्ध के मुकदमे शुरू हो गए राजनीति अनिश्चित सी रही क्योंकि असैनिक सरकार की वापसी और दंगों की संभावना काफी ज्यादा थी लेकिन सिविल समाज ने मुजीब के हत्यारों की फांसी जोकि 1975 में किए गए हत्या के अपराध के लिए दी गई थी और अपराधी युद्ध के मुकदमों का समर्थन किया बांग्लादेश के नीरिक्षकों का मानना है कि इसका मीडिया समुदाय के तीखे धरुवीकरण पर सामान्य असर पड़ेगा जबकि वे किसी भी बात का नाजायज फायदा नहीं उठाते थे।

विविध भाषण

बांग्लादेश के अपवाद के साथ इस रिपोर्ट में शामिल सभी देश विविध भाषायी हैं भाषाओं की विविधता मीडिया दर्शकों के विभाजन और संभवत अलग समाज में अलग भाषण की रचना की अगुवाई करती है हालांकि इन देशों में एक महत्वपूर्ण अंग्रेजी भाषी मीडिया उपस्थित है, अंग्रेजी भाषा का प्रभाव बंद है और असमान है भारत में अंग्रेजी भाषी मीडिया बड़ी है और लगातार बढ़ रही है यह आय और धन के पैमाने के उपरी छोर पर जनसांख्यिकीय समूहों को पूरा करता है और इस प्रकार सबसे अधिक विज्ञापन आकर्षित होते हैं पाकिस्तान और श्रीलंका के लिए भी ये सही है लेकिन कुछ कम लेकिन बांग्लादेश और नेपाल में अंग्रेजी भाषी मीडिया अपने प्रसार में इसकी जनसंख्या से अपेश्राकृत छोटी हैं इसका प्रभाव इससे पता चलता है कि ये इपरी तबके द्वारा पढ़ा जाता है और बाहरी देशों के लिए बुनियादी जानकारी प्रदान करता है जिससे इन देशो में घटनाओं की समझ को सही दिशा दे सकें।

इस क्षेत्र का अंग्रेजी भाषी मीडिया एक अपेक्षाकृत संकीर्ण और

संपन्न तबके के हित में अपने आप को करने में अग्रसर है स्पषट रूप से अन्य भाषी मीडजिया के अपने संबंधित समुदायों के होने की तुलना में ये एक अलग घटना है अकसर जब सांस्कृतिक विभाजन का ये रूप राषट्रीय राजनीति के गलत रास्तों पर आता है, मीडिया एक या एक से अधिक पक्ष के सहायक की तरह इस संघर्ष में खींच लिया जाता है इस तरह का एक मामला है भारतीय राज्य जम्मू–कश्मीर में सिविल गड़बड़ी का जोकि किसी धार्मिक संस्था को विवादास्पत भूमि आबंटित करने को लेकर जुलाई–अगस्त 2008 में हुआ था दोनों विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्र अपनी प्रतिक्रिया पर अड़े थे परिणामस्वरूप कश्मीर क्षेत्र का मीडिया भड़काऊ और बढ़ी–चढ़ी रिपोर्टिंग के लिए जम्मू में आलोचना का पात्र बन गया जबकि जम्मू मीडिया की कश्मीर क्षेत्र में अपनी अतिसंवेदनशीलता के लिए निन्दा होने लगी इस ध्रुवीकरण ने अंग्रेजी मीडिया को भी उतना ही संक्रमित किया जितना स्थानीय भाषी मीडिया को पहाड़ी और घाटी में रहनेवाले समुदायों के बीच में तेज धरुवीकरण के साथ एक समान परिदृश्य लागू किया गया अनिवार्य रूप से इन समुदायों के बीच राजनीतिक तनाव मीडिया में आया पत्रकारोंके काम करने की स्वतंत्रता में बाधा डालने लगा।

मीडिया और सामाजिक महत्व

जब महत्वपूरण सामाजिक नीतियों के मुद्दे पर चर्चा होती है तो मीडिया की भी सामाजिक जड़ों पर सवाल खड़े होते हैं उदाहरण के लिए, भारतीय जाति महाधर्माधिकारी के अंतर्गत ऐतिहासिक हानि पर उठाया गया निश्चयपूर्ण कदम 2006 में जब भारत में इस तरह की सार्वजनिक बहस चल रही थी दिल्ली में एक सर्वेक्षण में पाया गया कि खबर की प्राथमिकता के किसी भी तरह के प्रभाव सामान्य से लेकर निर्णायक तक–के अनुसार 80 प्रतिशत पत्रकार जाति धर्माधिकारियों के उच्च स्तर से थे उसमें से कुछ पत्रकरा दलित और पिछड़ी–जोकि जाति विचारधारा में बहिष्कृत माने जाते हैं–वर्ग से थे.और कुल आबादी में हिस्सेदारी के अनुसार धार्मिक अल्पसंख्यकों का भी अनुपात इसमें नीचे चला गया[१]

श्रीलंका में मीडिया समुदाय की सामाजिक जड़ों और उन दर्शकों का चरित्र जिन्हें वो संबोधित करते हैं का महत्वपूर्ण प्रभाव हैं ये छवि तबतक साफ नहीं होगी जब तक सरकार और तमिल बागियों के बीच चौथाई सदी लंबा हिंसक मुकाबला इस पर अपनी छाया डालता रहेगा जहकि शत्रुता की औपचारिक घोषणा मई 2009 में ही कर दी गई थी इस धरुवीकरण का स्वरूप मीडिया में भी प्रतिबिंबित हुआ

हाल के वर्षों में इस धरुवीय संघर्ष में मुस्लिम समुदाय की धारणाओं के रूप में एक और आयाम जुड़ गया जोकि दो बेदर्द लड़ाकों के बांध के बीच में घसीट लिए गए यहां भी मीडिया की स्थिति गंभीर थी इसे भी शत्रुता में ले लिया गया और इन्होनें युद्धरत पक्षों के हितों से अलगाव

१. देखें–आलोके थाकुरे, ब्रेकिंग इनटू द मीडिया, द हूट १२ जून २००६, और भारतीय मीडिया में जाति का प्रभाव, द हिंदू, ३ जून २००६। मीडिया के सकारात्मक भूमिका पर एक व्यापक वाद–विवाद देखें– रिजर्वेशन : द डाई इज कास्ट, द लिटिल मैगजीन, वाल्यूम फाइव, नंबर फोर एंड फाइव, २००६ यह कॉपी ऑनलाइन भी खरीदी जा सकती है संपर्क करें – http://www.littlemag.com/reservation/printmag.html).

की भावना को खोकर, खुद को संघर्ष का खंडन करने वाला एक बेकार उपकरण साबित किया।

श्रीलंका में मीडिया के साथ एक लंबे समय से चली आ रही समस्या जुड़ी है...जैसा कि एक द्वीप राष्ट्र की मीडिया के 2003 में किए गए अध्ययन में लिखा गया है कि विभिन्न संस्कृतियों की रिपोर्टिंग बहुत कम है हर मीडिया समुदाय अपने संकीर्ण भाषायी समूह या सामाजिक आर्थिक स्तर की रुचि और पसंद का प्रबंधन कर ये समझ लेता है कि उसका मिशन पूरा हो गया लेकिन जहां तक क्रास सांस्कृतिक मीडिया के ध्यान देने की बात है ये प्राय ''अन्य बर्घर के सामाजिक निन्दात्मक पहलुओं की तरफ होता है[२]'' युद्ध के बाद के वर्षों में पत्रकार संगठनों से जागरूक चुनावों के साथ चीजें बदलने लगीं, यह सुनिश्चित करने के लिए कि उनका व्यवसायिक काम व्यापक मामलों से परिलक्षित है ना कि सिर्फ अपने समुदायों से यह स्थिर रूप से निंदा को आमंत्रित करता है और कई मामलों में उत्पीड़न और हिंसक दंड को भी जो कि सरकारी मुलाजिमों द्वारा कराया जाता है लेकिन इस सक्रिय युद्ध की समाप्ति के साथ, मीडिया पेशेवर रिपोर्टिंग के एक नए मुहावरे के निर्माण की कोशिश कर रहे हैं जो कि छोटे समुदायों की पहचान के साथ चले और राष्ट्र के अल्पसंख्यकों के मामले उचित और न्यायसंगत ढंग से सामने ला सकें कम से कम पदधारी शासन प्रणाली के प्रयासों में विकट बाधाएं न रहें श्रीलंका के युद्धोपरांत सामाजिक न्याय से आर्थिक विकास को प्राथमिकता जैसे विषयों को बदलने के काम में बाधाएं न रहें।

जोखिम के क्षेत्र

पाकिस्तान में खैबर पख्तून्वा, बलूचिस्तान और फेडेरल एडमिनिसट्रेटिव ट्राइबल एरिया (फाटा) में चल रहे संघर्ष का बड़ा असर पत्रकारों पर पड़ा है. यही नहीं महज संघर्ष के क्षेत्रों में ही पत्रकार जोखिम में हों ऐसा नहीं है। कानून का मखौल उड़ाने वाले कृत्यों पर रिपोर्ट करने पर स्थानीय दबाव समूह और राज्य सुरक्षा एजेंसिया अक्सर पत्रकारों को धमकाते हैं और उनपे हमले करते हैं। श्रीलंका में गृह युद्ध के सबसे ख़राब दौर की तरह पाकिस्तान में भी अब हमला कहीं भी हो सकता है, और निशाना ऐसे चुना जाता है ताकि जान-माल का ज्यादा से ज्यादा नुकसान हो- जैसे जुलाई 2010 में लाहौर में दाता गंज बख्श की मस्जिद में बम धमाका हुआ।

पाकिस्तान में पत्रकारों का संगठन लोकतंत्र की बहाली के लिए आवाज़ उठाने में सबसे आगे रहा है। इस आन्दोलन के दौरान मीडिया मालिकों, संपादकों और दूसरे व्यावसायिक समूहों जैसे वकीलों के साथ पत्रकारों की व्यापक सहमति बनी लेकिन ये व्यापक गठजोड़ 2008 में निकटतम उद्देश्य के हासिल हो जाने के बाद कायम नहीं रह सका। पाकिस्तान के सबसे बड़े पत्रकार संगठन ने 2001 में घोषित किये गए वैधानिक वेतनमान को लागू कराने में कड़ा संघर्ष किया है, साथ ही संघर्ष क्षेत्र में काम कर रहे पत्रकारों के लिए अतिरिक्त सुरक्षा उपाय अपनाने पर भी आन्दोलन किया है। जनांदोलन और कुछ मौकों पर बहिष्कार या सामूहिक कार्य नहीं करने जैसे संघर्ष, आंशिक राजनीतिक सफलता के साथ अपनाये गए है।

चिटगोंग पहाड़ी क्षेत्र और खूलना के दक्षिण-पश्चिम प्रशासनिक संभाग को छोड़कर बांग्लादेश में दक्षिण एशिया के दूसरे देशों की तरह उग्रवाद की समस्या नहीं है। यहाँ दूसरे नागरिक संस्थानों के साथ-साथ पत्रकारों के संगठन भी राजनीतिक दलों के खेमे में बंटें हैं, राजनीतिक धरुवीकरण का ये माहौल ही संघर्ष की बड़ी वजह है दक्षिण-पश्चिम जिलों में पत्रकारों को धमकी और उनसे मारपीट चिंता की बड़ी वजह है। बांग्लादेश के छह मुख्य प्रशासनिक इलाकों में से एक खूलना संभाग में पत्रकारों के लिए सबसे खतरनाक माहौल है। वास्तव में मीडियाकर्मियों और दूसरे नागरिकों पर अचानक और योजनाबद्ध तरीके से हिंसा का ये तांडव इसी इलाके से शुरू हुआ इस्लामिक गुटों और चरमपंथी वाम संगठनों की वजह से मीडिया में असुरक्षा का माहौल है।

नेपाल ने पिछले तीन सालों में मीडिया पर पाबंदी को गहरे से महसूस किया है और इस अनुभव से प्रेस की आज़ादी के लाभ और उसके लिए लड़ने की ताकत पाई है। फरवरी 2005 में जब राजा ज्ञानेंद्र ने संपूर्ण सत्ता हथियाने की आखिरी कोशिश की तो सबसे पहले फेडरेशन ऑफ नेपाली जर्नलिस्ट ने इसकी निंदा की और इसे लोकतंत्र का तख्तापलट करार दिया. इसके बाद तमाम पत्रकारों को जेल भेजा गया जिसमें एफएनजे के शीर्ष पदाधिकारी भी शामिल थे। पूरी तरह से सेंसरशिप लागू कर दिया गया।

मार्च 2006 की शुरुआत से जब माओवादी उग्रवाद की वजह से शाही वर्चस्व पर दबाव बढ़ने लगे तब लोकतान्त्रिक ताकतें संगठित होने लगीं जिसमें एफएनजे की अगुवाई में नेपाल प्रेस यूनियन और नेशनल जर्नलिस्ट यूनियन ऑफ़ नेपाल ने अहम भूमिका निभायी मीडिया समुदाय को उस वक्त बड़ी नैतिक सफलता हाथ लगी जब राजा ज्ञानेंद्र को अपनी परम सत्ता को त्याग कर राष्ट्रीय परिषद को बहाल करना पड़ा नैतिक जीत आगे बढ़ती गई। मीडिया समुदाय नेपाल के वर्किंग जर्नलिस्ट एक्ट में महत्त्वपूर्ण बदलाव कराने का दबाव बनाने में सफल रहा, जिसके तहत सभी पत्रकार परिभाषित शर्तों के साथ तन्खवाह पाने और नौकरी करने के हकदार होंगे, साथ ही मीडिया संस्थान व्यवसायिक योग्यता के विकास के लिए प्रतिबद्ध होंगे। मीडिया समुदाय ने लोकतंत्र की बहाली में जो भूमिका निभायी उसे देखते हुए अंतरिम राष्ट्रीय परिषद ने सूचना के अधिकार का कानून भी पास किया।

हालाकि ये कानून नेपाल के प्रतिकूल हालातों के चलते प्रभावी नहीं हुआ, लेकिन मीडिया समुदाय इस बात पर नज़र बनाए हुए हैं ताकी नेपाल की नयी राजनीतिक व्यवस्था मीडिया की आज़ादी और पत्रकारों के सामाजिक और व्यावसायिक अधिकारों को लेकर सजग रहे।

अंतर सीमा संघर्ष की वजहें.

दक्षिण एशिया के देशों में अंतर्देशीय संघर्ष के साथ-साथ देशों के बीच भी तनाव का इतिहास रहा है, खासकर भारत और पाकिस्तान के बीच, हालाकि कुछ हद तक भारत और बांग्लादेश, नेपाल, श्रीलंका के बीच भी तनाव रहा है। भारत और पाकिस्तान के बीच तनाव की बड़ी वजह कश्मीर

२. एस देशप्रिया और एस हातोतुवा, स्टडी ऑफ द मीडिया इन द नार्थ ईस्ट ऑफ श्रीलंका, सेंटर फॉर पॉलीसी अल्टरनेटीव, श्रीलंका और इंटरनेशनल मीडिया सपोर्ट, डेनमार्क,२००३ पेज ८

और सीमा पर आतंकवाद पर एक दूसरे की चिंताएं रही हैं। पाकिस्तान की सीमा अफगानिस्तान के साथ लगी हुई है, जहा संघर्ष की सम्भावना बनी रहती है क्योंकि दोनों देश एक दूसरे पर संदेह करते हैं कि वो राजनीतिक अस्थिरता का अड्डा बन गया है। इन संघर्षों का देशों के बीच और ग्लोबल असर होता है। ये संघर्ष जटिल आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक वजहों से पैदा होते हैं। इससे सीमा पार परिवारों और जातियों के सम्बन्ध जैसे इतिहास के कारकों पर भी असर पड़ सकता है. विभाजित जम्मू कश्मीर के दोनों ओर, बांग्लादेश और उससे सटे हुए भारत के राज्यों, नेपाल के मैदानों और भारत में बिहार और उत्तर प्रदेश के तराई इलाकों और अफगानिस्तान और पाकिस्तान को अलग करने वाली डूरंड रेखा के आर पार पश्तून कबायलियों के बीच इसे देखा जा सकता है।

औपनिवेशिक शासन की समाप्ति पर राष्ट्रों की सीमाओं पर बने भ्रम की वजह से हिंसा की सम्भावना विषय पर हाल के एक निबंध में भारत की सीमाओं पर तीन तरह की राष्ट्रीय भावना के गुबार को चिन्हित किया गया है – मेक्मोहनियन और रैडक्लिफियन (क्रमश: चीन और पाकिस्तान के साथ अंग्रेजों के सीमा निर्धारण के आधार पर) और कश्मीरियन (क्षेत्र के भारत में विलय से पैदा हुए हालत के कारण) इनकी वजह से हिंसा के खास उभार देखे गए हैं, खास कर सीमावर्ती इलाकों में जहा पर समुदायों के बीच नैसर्गिक भाईचारा और रिश्ते राष्ट्रीय भावनाओं में बहकर हिंसक संघर्ष में बदल गए हैं।[३] कहने की जरूरत नहीं है कि भूभाग पर अधिकार को लेकर बने भ्रम की वजह से भारत जो कुछ झेल रहा है, उसका असर दक्षिण एशिया के दूसरे राष्ट्रीय सरहदों खासकर पाकिस्तान और बांग्लादेश पर भी पड़ रहा है।

एक तरह से सभी देशों में सीमा पार संबंधों को शक के नज़रिए से देखा जाता है। इससे सम्बंधित सामाजिक समूह उस देश की राजनीति में हाशिये पर पहुच जाता है। सामाजिक दुराव का ये रूप भारत, नेपाल और श्रीलंका में मौजूद जाति व्यवस्था से पैदा हुए सामाजिक दुराव से अलग तरह का है। चूंकि हर एक देश में मीडिया सरकारी निर्देशों पर पूरी तरह ध्यान देता है, इसलिए सीमा पार सम्बन्ध रखने वाले समाजों की आवाज़ शायद ही सुनी जाती है इसका नतीजा ये है कि संघर्ष जारी रहते हैं।

इन मसलों पर सरकारों के हाथ पर हाथ धरे रखने के रवैये की वजह से पत्रकार अक्सर बचाव की मुद्रा अपनाते हैं। जहा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कोई रोक नहीं है वहां भी मीडिया माहौल की वजह से खुद पर रोक लगा लेता है। मीडिया में परम्परागत सामाजिक और राजनीतिक निषेध की वजह से अलग अलग मतों पर लोक बहस पर रोक लगी रहती है। कश्मीर के हालत पर भारतीय मीडिया की रिपोर्टिंग और गृहयुद्ध और उसके बाद के हालत पर श्रीलंका में रिपोर्टिंग इसके दो उदाहरण हैं। लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं और समूह संघर्ष के उपायों पर नागरिक तब तक नहीं संलग्न होंगे जब तक सभी के बारे में तथ्यपरक सूचना की पहुँच नहीं होगी।

३. विलेम वान स्कैंडेल, द वगाह सिंडोरमः टेरीटोरियल रूट ऑफ कंटेमप्ररी वायलेंस इन साउथ एशिया, इन अमृता बसु और श्रीरुपा राय संपादक, वायलेंस एंड डेमोक्रेसी इन इंडिया, सीगल बुकस, लंदन और न्यूयार्क ,पीपी ३६ से ८२।

एकता और संघर्ष की रणनीतियां

जहा पत्रकार अधिक तादाद में होते हैं वहां उनकी संगठित शक्ति से अधिकारों की लड़ाई बेहतर ढंग से लड़ी जा सकती है। लेकिन जहा पत्रकार कम और बिखरें होते हैं वहां ये लड़ाई मुश्किल है। भारत जैसे बड़े भू भाग और विषम भौगोलिक परिस्थितियों वाले देश जैसे पाकिस्तान और नेपाल में राजधानी और महानगरों से दूर रहने वाले पत्रकारों के अधिकारों का हनन होता है। इसके लिए जरूरी है कि राजधानी और महानगरों में रहने वाले पत्रकारों और दूरदराज़ में रहने वाले पत्रकारों के बीच कड़ी जुड़े।

स्थानीय पत्रकारों में ताकत बढाने के लिए आवश्यक है कि ये शहरी क्षेत्रीय और वैश्विक नेटवर्क के माध्यम से काम करें।

पत्रकारों के संघ और संगठनों को स्थानीय स्तर पर प्रभावी भूमिका निभानी चाहिए. इसका एक उदहारण भारत पूर्वोतर का मणिपुर है जहा एकदूसरे की काट में लगे उग्रवादी गुट पत्रकारों पर दबाव बनाते रहते हैं। मणिपुर में पत्रकारों के संघ ने इन दबावों के खिलाफ कदम उठाते हुए एक आचार संहिता बनाई और राज्य प्राधिकरणों और उग्रवादी गुटों को साफ़ सन्देश दे दिया कि वो अपने विचारों को मीडिया के जरिये किस हद तक रख सकते हैं। इस तहर पत्रकारों की ताकत बढ़ गई।

संघर्ष के क्षेत्रों में रिपोर्टिंग के दौरान अक्सर उपयुक्त शब्दावली का इस्तेमाल भी एक चुनौती होती है। अक्सर उनकी न्यूज रिपोर्ट को दूर न्यूज रूम में बैठा स्टाफ हालात की दुश्वारियों को समझे बिना सम्पादित कर देता है। पत्रकार की मुख्य समाचार में लिखी गई भाषा और फोटोग्राफर का कैपशन में कोई अधिकार नहीं होता है. इससे संघर्ष के क्षेत्र में काम कर रहे पत्रकार के लिए खतरा पैदा हो जाता है क्योकि उसके नाम से जा रही रिपोर्ट पर उससे जवाब तलब होता है जबकि असली जिम्मेदारी तो कही और होती है। दक्षिण एशिया में पत्रकार संघों ने इस समस्या से निपटने के लिए अपनी शब्दावली का निर्माण किया है। इन संघों को एक मानक बनाना होगा क्योंकि संघर्ष के क्षेत्रों में काम कर रहे पत्रकार की सुरक्षा की जिम्मेदारी नियोक्ता और मीडिया संगठनों की है। सामूहिक जिम्मेदारियों से इसे किया जा सकता है, जैसे खतरनाक इलाकों कि ब्रेकिंग न्यूज़ के लिए कोई निश्चित मानक हो। पत्रकार अक्सर ब्रेकिंग न्यूज के घटनास्तल पर सबसे पहले पहुचने की प्रवृत्ति के कारण खतरों से घिरे रहते हैं। केबिल और सैटलाइट चैनलों की भरमार से ये प्रवृत्ति और बढ़ी है।

इस प्रतियोगिता में कमी लाना चाहिए सड़क पर प्रदर्शन से लेकर छुपे हुए रहकर भी प्रदर्शन किये जाते हैं। सड़क पर प्रदर्शन का सबसे ज्यादा असर होता है, जब उद्देश्य समान हों तो तमाम नागरिक समाज संगठनों को एकजुट किया जा सकता है। जब खतरा बड़ा हो और कई प्रकार का हो तब पत्रकारों को अचूक विकल्प बंद का सहारा लेना पड़ता है, जैसा कि कश्मीर और मणिपुर में कुछ मौकों पर हुआ है, हालाकि कश्मीर में बंद ज्यादातर जबरन होते हैं न कि स्वेच्छा से मीडिया जहा पर संगठित और औद्योगीकृत होकर काम करता है, और जहा पर निर्णय लेने वाले कई होते हैं वहां पर ये विकल्प उपयुक्त नहीं होता है।

जिन राज्य व्यवस्थाओं में चुने हुए प्रतिनिधि जनता के प्रति जवाबदेह होते है वहां पक्ष में माहौल तैयार करने में सहूलियत होती है क्योंकि वे मीडिया की सद्भावना बटोरने के इच्छुक होते हैं।

लेकिन ये पत्रकारिता के पेशे का ऐसा पहलू जिसमे सामूहिक फायदा की बजाय व्यक्ति का हित साधने की गुंजायश ज्यादा है। इसलिए जरूरत इस बात की है कि एक अगुआ और मान्य वार्ताकार हो जिससे हर जगह पारदर्शिता बनी रह सके जहा पत्रकार संगठनों में संगठन की भावना नहीं है, और उनके नेता सामूहिक जवाबदेही नहीं रखते वहां ये कार्य संभव नहीं होसकता।

कार्यविधि

इस प्रोजेक्ट में सबसे पहले मुश्किल और संघर्ष कि स्थिती में काम कर रहे पत्रकारों से संलग्न लोगों के लिए महत्वपूर्ण कार्य और गतिविधियों का सार निकाला गया। संघर्ष के दौरान रिपोर्टिंग और संघर्ष की परिस्थितियों में हिमायत के दौरान उठाये गए कदमों को इसमें शामिल किया गया। इस सन्दर्भ में, शोध के जरिये इस बात का उलेखन किया गया कि पत्रकारिता संगठनों के प्रशिक्षण के दौरान संघर्ष संवेदनशीलता के मुद्दे किस तरह तैयार होते हैं और संघर्ष संवेदनशीलता को स्थानीय आचार संहिता में किस तरह शामिल किया जाता है।

हर एक मामले में प्रधान व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित कर और सम्बंधित पक्षों का साक्षात्कार कराकर एक अनौपचारिक सर्वेक्षण किया गया. पांच देशों में South Asia Media Solidarity Network (SAMSN) के सहयोगी संगठनों के औपचारिक और अनौपचारिक संबंधों से सूचना एकत्र की गई। हिंसा और दबाव के भुक्तभोगी रहे पत्रकारों के संपर्क में रहे पत्रकारों से फिर से सम्बन्ध स्थापित कर जानकारी ली गई।

भारत और बांग्लादेश में समूह वार्ताएं भी आयोजित कराई गयीं श्रीलंका में हालात ठीक नहीं होने की वजह से वहां समूह वार्ताओं की बजाय देश में रह रहे और देशनिकाला दे दिए गए लोगों से अलग अलग जानकारियां इकट्ठा की गयीं। नेपाल और पाकिस्तान में जाकर प्रेस की आज़ादी के लिए संघर्षरत उन पत्रकारों के साक्षात्कार लिए गए जो संघर्ष की स्थितियों पर महत्वपूर्ण जानकारी दे सकते थे। इस प्रोजेक्ट की गतिविधियों जैसे सितम्बर 2008 और 2009 में हुए सम्मेलनों में भागीदार होने वाले लोगों के विषय से सम्बंधित फीडबैक को इस्तेमाल किया गया। शोध के निष्कर्षों के आधार पर सभी देशों के ड्राफ्ट रिपोर्ट तैयार किये गए और पांचों देशों के वरीय मीडिया प्रतिनिधियों के साथ जुलाई 2010 में नेपाल के काठमांडू में हुए क्षेत्रीय वार्ता में रखा गया।

गोलमेज वार्ताओं में इस बात का विश्लेषण किया गया कि मीडिया, पत्रकार और पत्रकारों के संगठनों की संघर्ष की परिस्थितियों और आतंरिक साथ ही दक्षिण एशिया के देशों के मध्य संघर्ष विराम को लेकर क्या भूमिका है। आतंरिक और क्षेत्रीय तौर पर संघर्ष के समापन को लेकर मीडिया समुदाय के कार्यों और एडवोकैसी आन्दोलनों की रणनीतियों पर इन वार्ताओं को आगे भी बढाया गया। इन वार्ताओं में इस बात को परखा गया कि अलग अलग सन्दर्भों में कौन सी रणनीति उपयुक्त साबित हुई है और भविष्य में संघर्ष के हल के लिए क्या किया जा सकता है

ये रिपोर्ट समस्त गतिविधियों और परामर्शों के आधार पर निकाले गए नतीजों को प्रस्तुत करती है।

बांग्लादेश

राजनीतिक ध्रुवीकरण मीडिया के पक्षपात का पोषण करता है

जनवरी 2009 के आरम्भ में निर्वाचित सरकार की बहाली के बाद से, बांग्लादेश ने एक स्थिर आम सहमति के पुनर्निर्माण की मांग की है जो कि आने वाले सालों में राजनीति का मार्गदर्शन करेगी। यह बहुत ही कठिन कार्य साबित हुआ है। मुख्य राजनीतिक विरोधी, बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी (बीएनपी) ने नव-निर्वाचित संसद की शुरुआत में ही घोषित किया कि इसके मुख्य प्रतिद्वंद्वी अवामी लीग के पक्ष में किये गये चुनाव का विरोध करते हुये कार्रवाही का बहिष्कार करेगी।

देश के मुख्य राजनीतिक संरचनाओं की, बुनियादी ढांचो के नियमों

संसद विपक्षी दलों के लिए वैध अखाड़ा नहीं है, इसलिए वह सड़कों पर उतर कर मीडिया के सहारे अपना खेल खेलते हैं।

पर सहमति पर, विफलता ने चिंता पैदा की है कि मीडिया एक बार फिर से अपने कड़वे पक्षपात में पड़ सकता है, जिसने मीडिया अधिकारों पर चार्टर के लिये सहमति बनाने में बांग्लादेश की विफलता में किसी दूसरे तथ्य से अधिक योगदान किया है।

1971 के देश के मुक्ति युद्ध के नेता शेख मुजीबुर्रहमान की हत्या के आरोप में घटना के दो दशकों से अधिक समय 1997 में शुरु हुए ट्रायल के बाद- 9 दोषी व्यक्तियों में से 5 को 2010 में फांसी की सजा पर संभावित गंभीर राजनीतिक कलह शुरु हुआ। शेख मुजीब के द्वारा स्थापित सत्तारुढ़ पार्टी, अवामी लीग ने फांसी को देश की धर्मनिरपेक्षा और लोकतांत्रिक के मूलभूत मूल्यों की पुनः पुष्टि का एक महत्वपूर्ण भाग बताया। विपक्षी पार्टी, बीएनपी, चुप रही, स्पष्ट था कि यह उन व्यक्तियों को फांसी देने पर राजी नही थी जिन्होने इसकी (बीएनपी) की सत्ता के दौरान सुरक्षा पायी थी।

मीडिया ने इस घटना की प्रतीकात्मक गुणवत्ता और कानून के नियमों के प्रति इसकी प्रतिबद्धता के लिये इसके मूल्यों का स्वागत किया। न्यू ऐज ने अपनी संपादकीय टिप्पणी में कहा कि ''मुजीब शासन के जानलेवा निष्कासन पर राजनीतिक बहस को दोषियों के शवों की अंत्येष्टि के साथ नहीं दफनाया जाएगा''। ''यह होना ही था'', इसने कहा, ''जानलेवा राजनातिक दुस्साहस की ओर ले जाने वाली राजनीतिक घटनाओं, इसके राजनीतिक और सांस्कृतिक परिणामों और हमारे इतिहास को राजनीतिक हैंगओवर से मुक्त कराने के तरीको पर- जो दुस्साहस 34 साल पहले हुआ था- समाज में कड़ी बहस और सूचनापूर्ण विचार विमर्श की आवश्यकता होगी[१]''।

बांग्लादेश का व्यापक रुप से प्रचलित अंग्रेजी दैनिक -डेली स्टार ने सकारात्मक आकलन करते हुये टिप्पणी की, ''यह इस देश के लिये आसान और बेहद तार्किकरुप से एक महान विचार की वापसी थी कि कानून का नियम महत्ता रखता है, कि न्याय सब कुछ है, कि जो कोई भी अपराध करता है उसे बचने की उम्मीद नही करनी चाहिये। वास्तव में, अब न्याय प्रक्रिया ने न्याय के सिद्धांत की बहाली को सुनिश्चित किया है, भले ही कोई भी राजनीतिक विश्वास या पार्टी संबद्धता हो, यह सभी नागरिकों के लिये लम्बे समय से हमारे बेहतर और समतावादी भविष्य को उवरुद्ध किये गये मार्ग को प्रशस्त करने का समय है[२]।''

इस रिपोर्ट को तैयार करने की प्रक्रिया के तौर पर बांग्लादेश में मीडिया समुदाय से पूछताछ के अनुसार बांग्ला-भाषा प्रेस ने, इसकी व्यापक पहुंच के साथ, थोड़े सी हिचक से साथ पांचो की फांसी का समर्थन किया। दो अपवाद, संग्राम, दक्षिणपंथी धार्मिक पार्टी के द्वारा नियंत्रित एक अखबार, जमात-ए-इस्लामी और अमर देश थे, जो कि अवामी लीग के प्रति एक विराधात्मक रवैया रखते थे। तब से अमर देश सत्तारूढ़ दल और विपक्ष के बीच एक गंभीर टकराव के कारण बन गया है जिसके बाद इसके संपादक की गिरफ्तारी ने अखबार को बंद करा दिया। यह घटना, जिसके बारे में और अधिक बाद में कहा जायेगा (बॉक्स देखें), दर्शाती है कि कैसे बांग्लादेश में मीडिया एक युद्ध के मैदान बन गया है, एक ऐसे वातावरण में जहां नागरिक और विधायी संस्थाओं को प्रामाणिक राजनीतिक होड़ के लिए मंचों में विकसित करने का अवसर मिलता है। तब बांग्लादेश में पत्रकारों का संघर्ष, आंशिक रुप से मीडिया को आंशिक रुप से संरक्षित करने के बारे में है, कि व्यापक जनता मीडिया पर सटीक और विश्वसनीय सूचनाओं के लिये निर्भर रहती है।

बाधाओं के बावजूद, यह एक उपक्रम है जिसमे उन्होने अहम सफलता अर्जित की है। एक निर्वाचित सरकार की बागडोर संभालने के कुछ ही हफ्तों के बाद, बांग्लादेश में एक विद्रोह से हिल गया जो कि देश की राजधानी ढाका में देश की सीमाओं की रक्षा करने वाले अर्धसैनिकबल-बांग्लादेश राइफल्स की एक बैरक में उत्पन्न हुआ। घटना का गहरा घाव हुआ और नव स्थापित सरकार को अस्थिर करने की धमकी दी। इससे यह भी पता चला कि नागरिक और सैन्य संस्थान एक चुनावी लोकतंत्र के केंद्रीय सिद्धांतों के प्रति प्रतिबद्ध रहते हैं। घटना के प्रति पहली प्रतिक्रिया में, सरकार ने वीडियो साझा करने वाली वेबसाइट और सैकड़ों अन्य ब्लॉग साइट्स को अवरुद्ध कर दिया, जिन्होने विद्रोह से संबधित दृश्यों और अन्य सामग्री को साइट पर उपलब्ध करा दिया। बांग्लादेश में इंटरनेट के सभी उपयोगकर्ताओं को इस साइट के उपयोग से वंचित कर दिया गया, यद्यपि यह प्रयास पूरी तरह से सफल नही हुआ। बांग्लादेश के बाहर यह साइट उपलब्ध रहीं और जानकारी का उपयोग करने के प्रति दृढ़ संकल्प लोगो को इंटरनेट ने पर्याप्त अवसर दिये[३]।

बांग्लादेश में मुख्यधारा के मीडिया, यद्यपि, गदर के दौरान और बाद में गंभीर बाधाओं से बच निकला। यह आंशिक रुप से इसलिये हुआ क्योंकि- जब विद्रोहियों द्वारा की गई ज्यादतियों के पैमाने स्पष्ट हो गये- सब एक साथ आ गये और नयी सरकार के द्वारा विद्रोहियों को न्याय देने के प्रयासों का समर्थन किया। सितम्बर 2010 के मध्य तक, उन विद्रोहियों के लिये एक फैसला किया जिन लोगों ने सिलहट शहर में बैरकों में अपेक्षाकृत मामूली घटनाओं में भाग लिया था। चरम दंड दिये जाने की संभावनाओं की आशंकाओं के बीच ढाका के विद्रोहियों के लिये ट्रायल आरोप तय करने की अवस्था में पहुंच रहा था। यह भी अनिश्चित ही रहा कि क्या नागरिक शासन की वापसी ने मीडिया की आजादी का स्थिति ने एक महत्वपूर्ण अंतर बना दिया है। बांग्लादेश के एक मानव अधिकार संगठन- ओधिकार के द्वारा तैयार सूची के अनुसार 2008 में मीडिया आजादी के खिलाफ अपराध के 115 मामले आये- जिसमें अपहरण, धमकी और महत्वपूर्ण रिपोर्टिंग को मौन रखने के लिये कानूनी कार्रवाही शामिल है[४]। 2009 में, निर्वाचित सरकार बनने के बाद एक पूरे साल, इसी स्रोत के अनुसार मीडिया आजादी पर आक्रमण के

१. संपादकीय, न्यू एज, २६ जनवरी २०१०, जानकारी के लिए यहां संपर्क करें http://www.newagebd.com/2010/jan/29/edit.html#1.

२. संपादकीय, द डेली स्टार, २६ जनवरी २०१०, जानकारी यहां से ले. http://www.thedailystar.net/newDesign/news-details.php?nid=123985.

३ यह और अन्य संबंधीत घटनाऐं आईएफजे प्रेस फ्रिडम रिपोर्ट फॉर साउथ एशिया से जुड़े मई २००६ के अंक में मौजूद है- at: http://asiapacific.ifj.org/assets/docs/082/145/d084a52-925dc91.pdf.

४ ओधिकार रिपोर्ट जो २००८ में हुए बांग्लादेश के मानव संहार पर आधारित है उसके पेज नंबर ३६ को यहां से लें http://www.odhikar.org/report/pdf/hr_report_2008.pdf

मतभेदों के लिए आपातकाल कठिन समय होता है, लेकिन पत्रकार एकजुटता के साथ इस समय भी अपनी शिकायतों के लिए सड़कों पर उतरते हैं।

रेडियो चिढ़ाने वाले नियमों के कारण प्रतिबंधित रहता है। 2008 के शुरु में घोषित

आपातकाल और उसके बाद

सबसे अहम घटना जो कि इस रिपोर्ट पर निर्भर थी तत्काल चिंता के दायरे से बाहर घट 1994 में, नागरिक शासन के केवल 3 महिनों के बाद ही- शेख मुजिब के बाद सैन्य शासन के लम्बे समय के बाद-बांग्लादेश फैडरल पत्रकार यूनियन में विभाजन हो गया। दोनो पक्षों ने मुख्य संघ की पदवी का दावा किया और देश की दो मुख्य राजनीतिक पार्टियों की संरचना में कड़वे धरुवीकरण के कारण, जो कि प्रारंभिक अवस्था में थीं, यह विभाजन बना रहा।

2001 में, राष्ट्रीय चुनावों के तुरंत बाद राजनीतिक संरचनाओं में से एक के लिये एक निर्णायक विजय के तौर पर, बांग्लादेश की धार्मिक अल्पसंख्यकों के खिलाफ योजनाबद्ध हमलों की श्रृंखला घटित हुई, उन लोगों के लिये भी जो कि धार्मिक तटस्थता से खड़े हुये थे। इस समय तक अवामी लीग और बांग्लादेश राष्ट्रीय पार्टी के बीच कड़वाहट पूर्ण हो चुकी थी और लाइलाज हो चली थी। फूट काफी बढ़ गयी थी, देश के इतिहास पड़ोसियों और दुनिया से तालुकात के तरीकों जो राष्ट्र के हित में हो-पर मतभेदों से यह खाई और गहरी हो गयी।

जबकि चुनावी की दूसरी प्रक्रिया 2006 के शुरु में होनी थी, राजनीतिक हिंसा सड़को पर उतर आयी। और इनकी गोलीबारी में मीडिया एक बार फिर से फंस गया। मुद्दा था कि क्या एक अवलंबी सरकार, जिसके पास राज्य सत्ता पर अधिकार थे, स्वतंत्र चुनाव सुनिश्चित कर सकती है। बांग्लादेश में राष्ट्रीय कानून सरकारों के बीच मनमुटाव की स्थिति में राज्य के मामलों के निपटारे के लिये एक कार्यवाहक प्रशासन प्रदान करता है। लेकिन राष्ट्रीय पार्टियों के बीच आपसी विश्वास टूटने से और राष्ट्रीय संस्थाओं में जनता के अविश्वास इतना गहरा हो चुका था कि पूरी लोकतांत्रिक प्रक्रिया को निलंबित कर दिया गया और ''आपातकाल शासन'' घोषित कर दिया गया। जिसका नेतृत्व असैनिक नौकरशाह का एक समूह कर रहा था। लेकिन असलियत में सशस्त्र सेना की शक्ति उसके पीछे थी।

आपातकाल घोषित होने के तत्काल बाद से ही न्यूज ब्लैकआउट था। संपादकों, वरिष्ट पत्रकारों और नव निर्वाचित कार्यवाहक प्रशासन के अधिकारियों के बीच बैठकों के दौर शुरु हुए। समाचार रिपोर्टिंग पर लगा प्रतिबंध तब हटा लिया गया यह कहते हुए कि मीडिया के तथ्यात्मक रिपोर्टिंग ही करेगी। टेलीविजन चैनलों ने फिर से समाचार कार्यक्रमों को दिखाना शुरु कर दिया और यद्यपि कुछ एहतियात और आत्म-सेंसरशिप के साथ, समाचार पत्रों ने कहानियों को छापना शुरु कर दिया।

दोनों बांग्लादेश आर्मी के चीफ और स्टाफ और राष्ट्रपति के मुख्य सलाहकार- जो कि प्रधानमंत्री की शक्तियों के साथ कार्य कर रहे थे- हर अवसर पर निश्चित रहे कि जब तक संसद निलंबित रहे, मीडिया से

उन्ही परिस्थितियों के 266 मामले आये[५]।

यह ध्यान देने योग्य है कि 2008 का डाटा समझ मे आता है क्योंकि आपातकाल शासन के दौरान महत्वपूर्ण रिपोर्टिंग के मार्ग में तमाम तरह की बाधाएं थीं। ओधिकार ने 2008 के लिये अपनी रिपोर्ट में उल्लेख किया ,प्रेस और इलैक्ट्रॉनिक मीडिया पर 2008 में पूरे साल ''प्रकट और गुप्त प्रतिबंध'' लगे रहे। इन भिन्न प्रकार के प्रतिबंधों ने सुनिश्चित किया कि मीडिया दमन की सच्ची हद को सटीकता से निर्धारित नही किया जा सकता, क्योंकि संबधित सूचना को सार्वजनिक क्षेत्र में उभरने का कोई और मार्ग नही है। विश्वास करने का कोई और आधार नही है कि नागरिक शासन की वापसी के बाद से समग्र मानव अधिकार स्थिति मे सुधार हुआ है।

ओधिकार की 2008 की रिपोर्ट में 149 अतिरिक्त न्यायिक हत्याओं का उल्लेख किया गया। 2009 में यह न्यायिक हत्याओं की संख्या 154 थी। यंहा एक बार फिर, अस्वीकार करने की आवश्यकता है कि 2008 में सूचना का वातावरण उतना पारदर्शी नही था। उस साल की तस्वीर की 2009 के आंकड़ो से तुलनी नही की जा सकती। फिर भी अतिरिक्त-न्यायिक हत्याओं के रिकॉर्ड के बारे में विशेषरुप से इस मुद्दे पर मीडिया रिपोर्टिंग निहितार्थ के संदर्भ में -चिंता करने का आधार है।

अधिकांश दक्षिण एशिया में, पिछले दो दशकों में बांग्लादेश में मीडिया का तेजी से विकास हुआ है, यद्यपि विकास असमान हुआ है। प्रिंट मीडिया की पहुंच और दायरा कम विज्ञापन राजस्व स्त्रोतों और कम साक्षरता के स्तर के कारण सीमित है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया विकसित हो गया है लेकिन काफी हद तक मनोरंजन पर केंद्रित रहता है।

५ ओधिकार रिपोर्ट के पेज नं २७ जो बांग्लादेश के मानव संहार से जुड़े ओधिकार रिपोर्ट में है लेने के लिए लॉग ऑन- http://www.odhikar.org/documents/2009/English_report/HRR_%202009.pdf

सार्वजनिक बहस के लिये एक प्रभावी मंच के तौर पर काम करने की उम्मीद की जाती है। हालाकि आपातकाल के अंतर्गत पहले कार्य में मीडिया से निपटने के लिये एक विशेष सैल की स्थापना करना था जिसका अर्थ नियंत्रण स्थापित करना था। मीडिया को अखबारों में महत्वपूर्ण टिप्पणियों पर सीमा पर अलिखित परामर्श जारी किये गये। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के लिये, लगातार अन्तरालों में विशेष लिखित आदेश जारी किये गये उन मुद्दों पर जो कि लाइव बातचीत के शो में प्रसारित किये जा सकते थे और लोगों के बारे में जो कि बुलाये जा सकते थे।

इस दौरान प्रशासन ने लगातार आदेश जारी किये जिसमें मीडिया से आपातकाल शासन के कारण को समर्थन देने के लिये कहा गया। अप्रैल 2007 में, सरकार ने सेंसरशिप को एक कदम आगे बढ़ाया, उन्हे पत्र लिखकर प्रार्थना कि गयी कि वो गलत-प्रेरित, परेशान करने वाली या भ्रामक रिपोर्ट विशेषरुप से सरकारी अधिकारियों, व्यापारियों, पेशेवरों, बुद्धिजीवियों और राजनितिकों के खिलाफ न तो प्रकाशित करें और न ही प्रसारित करें। ''पत्र में कहा गया,'' सरकार यह आशा करती है कि देश का जनसंचार एक अराजनैतिक और पर्याप्त समाचार, फीचर, चर्चाएं, व्यंग्य चित्र और कार्टून प्रकाशित और प्रसारित करने में बहुत एहतियात बरतेगा ताकि इलैक्ट्रॉनिक और प्रिंट मीडिया का सकारात्मक भूमिका को बनाए रखा जा सके।'' इसने फिर भी यह नही दर्शाया कि नया शासन प्रेस पर अपनी इच्छा थोपने में कितना तैयार था। इससे यह भी साफ नही था कि आपातकाल प्रशासन किन उपकरणों का प्रयोग करेगा। इन कारणों से, इन आदेशों का प्रारंभिक प्रभाव बहुत अधिक नही था। यद्यपि मीडिया के लिये आदर्श जारी रहा।

अगस्त 2007 में ढाका विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों के विरोध के साथ ही जब नये प्रशासन के लिये चुनौतियों के पहले संकेत उभरा, आधिकारिक स्वर काफी कठोर हो गया। प्रदर्शनों की कवरेज को लेकर प्रशासन काफी सख्त था। प्रशासन से सपष्ट सुझाव था कि मीडिया कवरेज से प्रदर्शन और भड़काया गया और इसने हिंसा का रुप ले लिया। जैसे जैसे अशांति फैली, आपातकाल शासन ने देश की मुख्य 6 शहरों में कर्फ्यू लगा दिया। मेनुअल हुसैन, राष्ट्रपति के सूचना सलाहकार, ने बांग्लादेश के मुख्य संपादकों और समाचार चैनलों के मुखियाओं की एक बैठक बुलाई और कहा कि वह ''होशपूर्वक और जिम्मेदारी से रिपोर्ट करें''। उसने कहा कि सरकार किसी भी रुप में सेंसशिप लागू करने का इरादा नही है, यद्यपि ऐसा करने के लिये इसके पास शक्ति है। इस निर्देश को प्रेस के भाग ने कठोर स्वर लिया लेकिन फिर से स्थिति और आमधारणा में कि आपातकाल प्रशासन आमसहमति की नयी विधा स्थापित करना चाहता है, बहुत असपष्टता के कारणों के बावजूद मीडिया की प्रतिक्रिया शत्रुता पूर्ण नही थी।

दिसम्बर 2008 तक आपातकाल में ढील देने तक यह अंतनिर्हित तनाव बना रहा। 5दिसम्बर2008 को जब अवशिष्ट आपातकालीन नियमों के ध्वस्त होने की कगार पर थे, न्यू ऐज, - बांग्लादेश के अंग्रेजी दैनिक में से एक, ने संपादकीय टिप्पणी में कहा कि पिछले 15 सालों के अनुभव किये गये तुलना में ''सामान्यतौर पर समाचार मीडिया हस्तक्षेप और धमकी सहना और विशेषरुप से उत्पीड़न सहना'' आपातकालीन शासन के दौरान ''काफी बढ़'' गया है।

गंभीर घटनाओं एक संक्षिप्त पुनर्कथन

पिछले पांच सालों की घटनाओं का पुनर्कथन निम्नलिखित है जो कि राजनीति को कैसे काम करना चाहिये और महत्वपूर्ण मीडिया कमैंटरी की सीमा पर सर्वसम्मति के अभाव में पत्रकारिता के खतरों पर ध्यान केंद्रित करता है

- नवंबर 2005 में, मानिकचारी प्रेस क्लब के महासचिव और दैनिक अजकर कागोज और दैनिक सुपरव्रत के संवाददाता हबीबबुर रहमान हबीब सत्तारुढ़ बीएनपी के कैडरो द्वारा मार दिये गये। आक्रमण से पहले, सत्तारुढ़ पार्टी के एक सांसद ने खगराचारी के एक स्थानीय पत्रकार के धमकी थी। बीएनपी के सदस्यों ने भी प्रदर्शन किया और दैनिक जुगांतर की कॉपियों में उलापारा, शिराजगंज में आग लगा दी। यह सब दैनिक जुगांतर के द्वारा ''बांग्ला भाई- इस्लामी मीलिटेट का मुखिया बीएनपी नेता के घर पर ठहरता है''- के शीर्षक से एक रिपोर्ट छापने के बाद हुआ।
- रफीकुल इस्लाम, राजशाही में दैनिक अमर देश के एक संवाददाता पर जतिवाड छात्रदल- सत्तारुढ़ पार्टी का विद्यार्थि विंग- के द्वारा क्रूरतापूर्ण आक्रमण किया गया।, दुर्गापुर प्रेस क्लब में 10 आक्रमणकारियों ने प्रवेश किया और रफीकुल पर आक्रमण किया, जो कि क्लब का अध्यक्ष था। नुरुल इस्लाम क्लब के महासचिव पर भी आक्रमण किया गया जब उसने बीच वचाव करने की कोशिश की। आक्रमण से पहले ही रफीकुल ने पुलिस में शिकायत दर्ज करवा रखी थी जब उसे एक जेएसडी सदस्य के द्वारा वसुली के लेकर रिपोर्ट न छापने की धमकी मिली थी, लेकिन कोई सुरक्षा नही दी गयी थी।
- मई 2006 में कुश्तिया के शहर में, एक बीएनपी सांसद, शाहीदुल इस्लाम, ने अपने हथियारबंद कैडरों को एक संवाददाता सम्मेलन पर आक्रमण करने के लिये भेजा जो कि एक स्थानीय प्रेस क्लब में हो रहा था। कई वरिष्ठ पत्रकार, जिन्हे ढाका से कार्यक्रम में शामिल होने के लिये आमंत्रित किया गया था, जिसमें इकबाल सोभन चौधरी, बांग्लादेश आबजर्बर के पूर्व संपादक और बीएफयूजे शामिल थे, आक्रमण में घायल हो गये।
- 5 मार्च 2007 को, जमाल उद्दीन, एबीएएस न्यूज एजेंसी और स्थानीय दैनिक दैनिक गिरी दर्पण के एक संवाददाता अचानक अपने घर कथालताल से गायब हो गया। अगले दिन उसकी लाश रंगामती झील के किनारे मिली। उसके चेहरे का एक हिस्सा क्षतिग्रस्त था और उसके शरीर के अन्य भागों पर खरोंच के निशान थे। उसकी गर्दन के चारों ओर एक रस्सी बंधी हुई थी। 12 दिनों के बाद आयी पोस्टमोर्टम रिपोर्ट में कहा गया कि जमालुद्दीन ने शायद आत्महत्या की है। हालांकि उसके साथियों और रिश्तेदारों ने इस रिपोर्ट को यह कहते हुये खारिज कर दिया कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर आधारित रिपोर्ट है और कि जमालुद्दीन की आत्मघाती प्रवृति नही थी। पुलिस ने दावा किया कि उन्होने जमालुद्दीन के शरीर के पास से एक ओडियो कैसेट बरामद किया है जिसमें उसने एक सुसाइड नोट रिकोर्ड किया है। हालांकि, पुलिस ने उसके साथियों को यह कैसेट सुनाने से मना कर दिया।

अमर देश मामला

1 जून 2010 को, बांग्लादेश सरकार ने बांग्ला दैनिक अमर देश की उस घोषणा को निरस्त कर दिया- जो एक अखबार का पंजीकरण करने के लिए स्थानीय कानून के तहत संदर्भित-बांग्ला दैनिक अमर देश को इस आधार पर कि कोई भी आधिकारिक और पहचान योग्य प्रकाशन नही रखना कानून का उल्लंघन है।

अखबार का कार्यवाहक संपादक, महमुदुर रहमान, को उसके तुरंत बाद गिरफ्तार कर लिया गया और देश विरोधी आयोग (एसीसी) द्वारा वित्तीय भ्रष्टाचार के कई मामलों का आरोप लगाया। उपायुक्त (डीसी) ढाका ने लागू कानून प्रिंटिंग प्रेस और प्रकाशन (घोषणा और पंजीकरण) अधिनियम, 1973, के तहत अमर देश का पंजीकरण रद्द कर दिया। चूंकि उसने कथित तौर पर पाया कि प्रकाशक का नाम जिसके नाम पर यह मार्च 2010 में पंजीकृत किया गया था, ने अधिकारियों को सूचित किया कि वह अखबार के साथ अपनी भागीदारी को बंद कर रहा है।

जैसे ही बांग्लादेश में नागरिक कानून लागू होने के तुरंत बाद, 2009 में रहमान द्वारा अखबार खरीदा लिया गया। तत्कालीन प्रकाशक ने अक्टूबर 2009 में निर्धारित किया है कि वह अखबार के साथ अपने सहयोग को बंद कर देगा और औपचारिक रूप से मार्च 2010 में स्थानीय अधिकारियों को अधिसूचित कर दिया। यह आवेदन जो कि रहमान ने अमर देश के प्रकाशक के तौर पर पंजीकरण के लिये दिया था, इस आधार पर अयोग्य करार दे दिया गया कि उसके खिलाफ कई आपराधिक मामलों दर्ज थे

अखबार का पंजीकरण रद्द होने के बाद ढाका पुलिस की विशेष शाखा की औपचारिक रिपोर्ट आयी, जिसमें यह पाया गया।

अखबार की परेशानियों का अधिक आसन्न कारण यह था कि इसे व्यापक रूप से मान्यता प्राप्त थी, और महत्वपूर्ण कहानियों की एक श्रृंखला थी जो कि सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों के भ्रष्टाचार के कथित कृत्यों पर चलाई गयी थी।

17 दिसंबर, 2009 को, अमर देश ने संयुक्त राज्य अमेरिका की एक तेल कंपनी के साथ एक संदिग्ध लेन-देन के बारे में जो कि प्रधानमंत्री के ऊर्जा सलाहकार के विशिष्ट सिफारिश पर संपन्न हुआ-एक रिपोर्ट छापी। रिपोर्ट में कहा गया कि सौदा समापन में अवैध परितोषण के रूप में 5 मिलियन अमरीकी डालर की राशि का भुगतान किया गया था। तीन दिन बाद, उस संवाददाता पर जिसके नाम पर कहानी दिखाई गयी थी ढाका के एक व्यस्त हिस्से में हमला कर दिया गया।

रहमान ने, जो पहले 2001-06 बीएनपी के नेतृत्व वाली सरकार में निवेश और ऊर्जा सलाहकार बोर्ड का अध्यक्ष था, पांच दिन बाद खुद गिरफ्तारी के खिलाफ अग्रिम जमानत ले ली। यह राहत देने में, अदालत ने सभी निचली अदालतों को निर्देश दिया कि इसकी अगली सुनवाई तक रहमान के खिलाफ मानहानि का दावा नहीं सुना जायेगा। 11 फ़रवरी 2010 को, रहमान पर ढाका में हमला किया गया था। वह घायल नही हुआ लेकिन जिस कार मे वह सफर कर रहा था बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गयी थी। प्रेस स्वतंत्रता की उल्लंघन के रुप में इस हमले के विरोध में तुरंत बाद एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया। लेकिन कई प्रमुख पत्रकार बीएनपी पर इसको राजनीतिक घटना में बदलने का आरोप लगाते हुये इस सभा से दूर रहे।

3 अप्रैल 2010 को एक बैठक में पत्रकारों ने बीएनपी और उसके राजनीतिक सहयोगी, जमात ए इस्लामी के साथ गठबंधन में आलोचना की इसे मीडिया कर्मियों का ''उत्पीड़न'' कहा। मांगों का एक चार्टर निकाला, और 15 जून, 2010 के अल्टीमेटम के साथ सरकार के प्रस्तुत किया। राजनीतिक मकसद के साथ अभियान ने अवामी लीग शिविर के पत्रकारों की प्रतिकूल टिप्पणी को आकर्षित किया। उदाहरण के लिये उन्होने इशारा किया कि हाल

- जहांगीर आलम आकाश, दैनिक संगबाद और सीएसबी टेलीवीजन का एक संवाददाता, 23 अक्टूबर 2007 को अपने घर बांग्लादेश के राजशाही प्रशासनिक प्रभाग से रैपिड एक्शन बटालिया के द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तार करने वाली पार्टी का नेतृत्व एक अधिकारी कर रहा था जिसका आकाश ने अपनी रिपोर्ट में जिक्र किया कि वह बहुत सारी हत्याओं के लिये जिम्मेदार है। एक स्थानीय नेता के द्वारा जबरन वसुली की शिकायत दर्ज कराने पर यह गिरफ्तारी की गयी। इस नेता के खिलाफ वित्तीय गड़बड़ियों की सैकड़ो रिपोर्ट आकाश ने की थीं जिसके बाद इस नेता को एक धार्मिक संस्थान की ट्रस्टीशिप से हाथ धोना पड़ा था। यद्यपि आकाश ने शिकायत दर्ज होने के तुरंत बाद उचित कोर्ट में अग्रिम जमानत के लिये अर्जी दे दी थी। लेकिन उसको दूसरी शिकायत पर हिरासत में लिया गया था जो कि आरएबी द्वारा रेड डालने के ठीक चार घंटे पहले ही दर्ज करवायी गयी थी। आकाश को 19 नवम्बर तक और फिर बाद में राजशाही पुलिस के द्वारा यातना दी गयी। यंहा तक की उसे जमानत पर रिहा कर दिया गया था, उसके खिलाफ ज्ञात अपराधियों के द्वारा ताजा मामले दर्ज करवाये गये। और उसे अपने घर लौटने के बजाय ढाका में शरण लेनी पड़ी। अब वह निर्वासन में रहते हैं।
- जहीरुल हक टीटू, दैनिक इंकलाब और द न्यू नेशन के एक संवाददाता को दक्षिण-पश्चिमी बांग्लादेश के उसके गृहनगर पिरोजपुर से अक्टूबर 2007 में हिरासत मे लिया गया। कोई मामला उल्लेखित नही था यद्यपि गिराफ्तारी आपातकाल शक्तियो के नियम की धारा 16(2) के तहत की गयी थी। जो कि गैर-पुलिस कानून को भी खोज और जब्ती की वही शक्तियां प्रदान करती है जो कि पुलिस के पास होती हैं। टीटू 2003 से बीएनपी के भीतर इस्लामिक तत्वों और उसके सहयोगियों की दुश्मनी झेल चुका था। उसके खिलाफ कई मामलों की जांच ही नही हुई क्योंकि बीएनपी ने अवामी लीग के साथ मिलकर शक्तियों की दुरुपयोग किया।
- 11 मई 2007 को , पत्रकार और मानव अधिकार प्रचारक तसनीम खलील को सादे कपड़ों वाले अधिकारियों के द्वारा ढाका में उसके घर से गिरफ्तार कर लिया गया। खलील को संसद भवन के आर्मी कैंप में ले जाया गया और उसे यातनाऐ दी गयी। बांग्लादेश के अंग्रेजी के एक अखबार दैनिक स्टार के एसिस्टेंट संपादक, खलील

ही में एक संपादक और प्रकाशक के रूप में रहमान की साख अपेक्षाकृत कुछ संदिग्ध थी, क्योंकि निवेश और ऊर्जा सलाहकार बोर्ड के अध्यक्ष पर अपने कार्यकाल के बाद उसने केवल अमर देश को खरीदा।

बीएनपी द्वारा 2007 में राजनीतिक शक्ति खोने के बाद, रहमान के खिलाफ भ्रष्टाचार के कई मामले दर्ज कराये गये। यंहा तक की अवामी लीग 2009 में सत्ता संभालने से पहले। जून 2008 में, उदाहरण के लिए, ''आपातकाल'' प्रशासन के तहत काम कर रही एसीसी, उसके खिलाफ दस करोड़ की राशि का गबन करने के लिये कार्यवाही शुरू की। इस मामले में उसका स्वामित्व एक ईकाई शिनेपुकुर होल्डिंग्स लिमिटेड के रूप में जो कि ढाका में अचल संपत्ति विकास में शामिल थी।[१]

फ़रवरी 9, 2010 पर, रहमान को जर्मनी की यात्रा करने की अनुमति देने से इनकार कर दिया गया। अप्रैल में क्षति के लिए दायर एक मामले में उन्होंने दावा किया कि इस यात्रा का उद्देश्य व्यापार मेले में जाना था है जो एक चीनी मिट्टी की चीज़ों की निर्माण इकाई के मालिक के रूप में उसके लिए संभावित व्यापार लाभ के लिये था। फिर भी इस मामले को प्रेस की स्वतंत्रता के उल्लंघन के रूप में स्थानीय मीडिया के एक वर्ग में प्रस्तुत किया गया।

यह मामला, अन्य की तरह, अस्पष्टता को दर्शाता है जो कि अखबार मालिकों के द्वारा व्यक्तिगत दावों को शामिल करती है कि उनके हित कुछ बड़े स्वतंत्र पत्रकारों के समुदाय के लोगों के साथ सुसंगत हैं। एक वातावरण जहां मीडिया एक निष्पक्ष और तटस्थ स्रोत के बजाय एक पक्षपातपूर्ण के रूप में देखा जाता है, पत्रकार राजनीतिक कटाक्षों की गोलीबारी के बीच में पड़ जाते हैं।

१ यह कहानी द डेली स्टार के २० जून २००८ के अंक में पढ़ा जा सकता है- www.dailystar.net/story.php?nid=42890.

ग्लोबल ब्रडकास्टर सीएनएन इंटरनेशनल के साथ भी कार्य कर चुके हैं और मानव अधिकार वॉच पर कई रिपोर्ट तैयार कर चुके हैं। खलील को यातना के दौरान गंभीर चोटे आयी और एक दिन की हिरासत के बाद उंहै छोड़ा गया।

- अरिफुर रहमान, बांग्ला दैनिक प्रथोम आलो के साथ जुड़े एक कार्टुनिस्ट को उसकी कम्पनी के द्वारा सितम्बर 2007 में निष्काषित कर दिया गया। उसके द्वारा मोहम्मद साहब पर बनाये गये एक कार्टून पर कुछ इस्लामिक समूह के द्वारा प्रदर्शन करने के बाद उसने हटाया गया। समाचार पत्र ने कार्टून छापने के लिये माफी मांगी, यद्यपि न तो संपादक और न ही प्रकाशक को प्रतिबंध का सामना करना पड़ा। रहमान को दो दिनों के बाद गिरफ्तार कर लिया गया। उसके साथ कोई नही खड़ा था, उसे 30 दिनों के लिये जेल भेज दिया गया। उसकी हिरासत के लगातार बढ़ने के बाद 20 मार्च 2008 को उसे छोड़ा गया। उसे सभी मामलों से जनवरी 2010 में छुट्टी दे दी गयी।

बांग्लादेश में पत्रकारों की संस्थाएं इन चुनौतियों से भिड़ने के लिये और अपने पेशे की रक्षा और सुरक्षा के लिये एकजुट हुईं। लेकिन उन्हे भिन्न स्तरों पर बाधाओं का सामना करना पड़ा। जब बीएफयूजे नवम्बर 2005 में एक पत्रकार सम्मेलन आयोजित करने के लिये तैयार हो रही थी। ताकि मीडिया के लिये बढ़ते दहशत के माहौल के खिलाफ विरोध दर्ज किया जा सके। सरकार ने अग्रिम रुप से आरक्षित किये गये स्थल को निरस्त कर दिया। कुछ परिभाषित सुरक्षा कारणों के अलावा कोई स्पष्टीकरण नही दिया गया।

पत्रकारों और मीडिया के खिलाफ हिंसा के इन कृत्यों केलिये कोई भी सजा नही हुई। इस मामले में अधिकांश दक्षिण एशिया में बांग्लादेश कुछ अपवादों को छोड़कर- मुक्ति की संस्कृति साझा करता है।

मानहानि मामले और जबरन वसूली के आरोप

मानव अधिकार के मामलों की कवरेज में पत्रकारों को गंभीर खतरो का सामना करना पड़ता है। विशेषरुप से जिन मामलों में सेना और अन्य सुरक्षा एजेंसियों के द्वारा अतिरिक्त न्यायिक हत्याओं के मामले शामिल होते हैं। महत्वपूर्ण रिपोर्टिंग को चुप कराने के लिये मानहानि कानून और जबरन वसूली के आरोप एक दूसरा गंभीर खतरा है।

जुलाई 2005 में, बाग्लादेशी भाषा के दो अखबारों के संपादकों के खिलाफ बीएनपी के एक सदस्य के द्वारा मानहानि के मुकदमें दायर किये गये। जिसमें कहा गया कि अखबार नें उसका और उसके भाई का नाम एक हत्या के मामले में प्रकाशिक किया था।

एक अन्य उदाहरण में, बीएनपी के नेता और नया नगर यूनियन परिषद के अध्यक्ष, जमालपुर जिले के मेलांदा के, फकीर अबु बकर सिद्दीकी, ने अपना नाम प्रकाशिक करने के लिये भोरेर कागोज, प्रोथोम आलो और शामोकल के स्थानीय पत्रकार के खिलाफ मानहानि का दावा किया इसमे एक केस दर्ज करवाया जिसमें दैनिक के संपादकों और प्रकाशक के नाम भी शामिल थे।

एक सकारात्मक उठाते हुये उच्च न्यायालय ने फरवरी 2006 में फजलुर रहमान दैनिक संगबाद के संपादक-को अग्रिम जमानत दे दी। जुलाई 2005 में संगबाद ने एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी जिसका शीर्षक था, ''जमालपुर में स्थानीय बीएनपी सदस्यों के बीच मतभेद''। इसमें एक राजनीतिक का नाम एक आपराधिक मामले में आया था। संपादक के खिलाफ और उस रिपोर्ट को लिखने वाले पत्रकार के खिलाफ मानहानि का मुकदमा दर्ज करवाया गया।

पत्रकार संगठनों में फूट डाल कर विभाजन

कई ऐसे अवसर आये जब मीडिया नें राजनीतिक दुश्मनी को ऐसे प्रस्तुत किया कि जिसने अव्यक्त दुश्मनी को चिंताजनक रुप से उभारा गया। एक व्यापक उदाहरण मार्च 2010 में पत्रकार जटिया क्लब के अध्यक्ष (राष्ट्रीय प्रेस क्लब) और बीएनपी अध्यक्ष खालिदा जिया के सलाहकार-शौकत महमूद के द्वारा सार्वजनिक हस्तक्षेप है। प्रधान मंत्री शेख हसीना के द्वारा पूर्व बांग्लादेशी राष्ट्रपति और बीएनपी के संस्थापक और राजनितिक प्रतीक जनरल जिया उर रहमान की कब्र की देखभाल पर सावर्जनिक खर्चे पर एक बयान से नाराज, महमूद ने एक चेतावनी जारी की कि जो कोई भी स्मारक को नुकसान पंहुचाने के बारे में सोचेगा उसे शारीरिक नुकसान हो सकता है। उसने प्रधानमंत्री से

आग्रह किया कि जब भी वह इधर से गुजरे तो बीएनपी संस्थापक की स्थायी राजनीतिक विरासत को विशेष रुप से बांग्लादेश की बहुदलीय लोकतांत्रिक व्यवस्था का कायम करने में भूमिका को सम्मान देने के लिये स्मारक को सलामी दें।

सत्तारुढ़ दल के सदस्यों नें महमूद के खिलाफ तुरंत मानहानि के 27 मुकदमे विभिन्न अदालतों में दर्ज करवाये गये। हांलांकि कानूनी नियम है कि ऐसे मुकदमेबाजी केवल सीधे पीड़ित व्यक्तियों द्वारा शुरू की जा सकती। बीएनपी ने प्रेस क्लबों के नेटवर्क को सक्रिय करके प्रतिक्रिया दी। जिसमें महमूद के लिये निष्ठा थी और उन्होने अपने सलाहकार के खिलाफ कानूनी प्रताड़ना के खिलाफ प्रदर्शन रैलिया आयोजित की। देश के विभिन्न भागों से अग्रणी पत्रकारों को भाग लेने की उम्मीद थी। लेकिन एक जो कि 20 मार्च को दक्षिण पश्चिम मुख्यालय के शहर खुलना में होने वाली थी को सार्वजनिक प्रणाली का प्रयोग करने की अनुमति देने से इंकार कर दिया। जिसने सत्तारुढ़ पार्टी और विपक्ष के बीच फिर से परस्पर दोषारोपण का दौर शुरु कर दिया।

मीडिया कमंटरी का धरुवीकरण शुरु हो गया। डेली स्टार के एक स्तंभकार ने, उदाहरण के लिये, प्रधानमंत्री के लिये मेहमूद की चेतावनी पर कबूल किया कि वह ''हैरान और आश्चर्यचकित'' है। इसे यह कहते हुये कि यह व्यक्ति के लिए ''सम्मान'' के सभी सांस्कृतिक मानदंडों के पार और आश्चर्यजनक रुप से एक निर्वाचित प्रधानमंत्री के लिये शारीरिक खतरे की बात है। यह दावा कि जिया उर रहमान इसलिये सम्मान के हकदार है क्योंकि उन्होने बांग्लादेश में ''बहुदलीय पार्टी लोकतंत्र'' की बहाली में योगदान दिया, को एक सिरे से खारिज कर दिया गयाः ''लोकतंत्र की बहाली की आड़ में, दिवंगत तानाशाह ने यह सुनिश्चित किया कि मुक्ति के लिये चल रहे सभी युद्ध खत्म कर दिये जाये ताकि स्वतंत्रता के दुश्मन फिर से राजनीति के केंद्रीय मंच पर विराजमान हों। पाकिस्तान की दिवानी पुरानी मुस्लिम लीगर और जमातिस, जो कि जेल में डाल दिये जाने चाहिये थे, एक ला नूरमबर्ग वापिस आ गया जो बांग्लादेश में खुद पुरुषो के लिये महत्ता रखता था। और आप इसे बहुदलीय लोकतंत्र की वापसी कहते हैं[६] ?''

जेपीसी के राजनीतिकरण के लिये पत्रकार समुदाय में भी अशांति की सार्वजनिक अभिव्यक्ति थी। लेकिन इन चिंताओ को शांत कर दिया गया चूंकि केवल महमूद ही ऐसा वरिष्ठ पत्रकार नही था जो कि दलगत राजनीति में संलग्न है। 2009 में बीएफयूजे का अध्यक्ष अवामी लीग से जुड़ गया और इकबाल सोभन चौधरी नें पार्टी के टिकट पर राष्ट्रीय चुनाव लड़ा और हार गया। पत्रकारों के एक राष्ट्रव्यापी संघ के नेता के रुप में और देश की एक मुख्य पार्टी के प्रति वफादारी की भूमिका बीच में कोई विरोधाभास नही देखा गया।

सीमा पार से संघर्ष की संभावना

बांग्लादेश को भारत के साथ संबंधों में गंभीर द्विपक्षीय कठिनाई आती रही और इसने मीडिया के कामकाज पर भी गहरा प्रभाव डाला। कलह की ताजा वजह भारत के द्वारा मणिपुर के तिपाईमुख में एक बांध के निर्माण प्रस्ताव रही। बांग्लादेश में जल विशेषज्ञों ने अनुमान लगाया कि इससे उनके देश के निचले इलाकों के लिय गंभीर परिणाम हो सकते हैं। मीडिया ने इस मुद्दे को उठाया और बांग्लादेश में भारतीय उच्चायुक्त को उनके अर्नगल बयान के लिये लक्षित किया गया। इसने सरकारी अधिकारियों और मीडिया के बीच एक दूसरे पर उंगली उठाने के लिये प्रेरित किया जिससे दोनो के बीच मनमुटाव हो गया।

इसके अलावा, दोनो देशो के बीच सीमा पर क्षेत्रीय परिक्षेत्रों की समस्या के समाधान में रोड़ा अटकाया। भारत बांग्लादेश के राज्यक्षेत्र के भीतर देश के कई क्षेत्रों पर संप्रभुता रखता है जिसका यह उपयोग नही करता है और यही बात बांग्लादेश की भारत के भीतर क्षेत्रों पर संप्रभुता पर भी लागू होती है। सीमा के सामांकन, नागरिक निष्ठा और सीमासुरक्षा रक्षकों के अधिकार क्षेत्र को लेकर अनिश्चितताओं ने सीमा पर तनाव को उत्पन्न किया है। कभी कभी निर्दोष लोगों की जाने भी गयी है। इन मुद्दों की मीडिया कवरेज ने एक बार फिर से इन समस्याओं के सही स्रोत और दोनो पक्षों की ओर से संभव समाधान को नही समझ पाया।

व्यापार, प्रवास और सीमापार से प्रायोजित विद्रोह दोनो पड़ोसी देशों के बीच आपसी रिश्ते में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा। ढाका में भारतीय उच्चायुक्त के द्वारा नयी वीजा नीति लागू करने के साथ ही– जिसके लिये ऑनलाइन एप्लिकेशन उपलब्ध हैं– हाल के सालों में दोनो देशों के बीच यात्रा करना भी बहुत कठिन हो गया। हाल ही के महीनो में, संयुक्त राष्ट्र के औषध नियंत्रण एजेंसी की एक रिपोर्ट ने इशारा किया कि बांग्लादेश में दवाओं की तस्करी से उनके अवैध प्रयोग ने उस देश के मीडिया का ध्यान आकर्षित किया।

इन अवैध दवाओं का सबसे बड़ा स्रोत के रुप में भारत की पहचान की गयी। यद्यपि भारतीय मीडिया में इस कहानी ने थोड़ा ध्यान आकर्षित किया, हालांकि भारत के पड़ोस में बांग्लादेश एक बड़ा देश है, लेकिन भारत के लिये की लीग में इसको शामिल नही समझा जाता है। मीडिया को सीमा पार के मुद्दे पर एक अधिक प्रबुद्ध सार्वजनिक विचार विमर्श करने की धारणाओं में इस विषमता को बताने की जरुरत है। इसमें संघर्ष की संभावना भी शामिल है।

संघर्ष के स्रोत और उपलब्ध उपचार पत्रकारों की धारणाएं

आपातकाल शासन के शुरुआती सालों के दौरान बांग्लादेशी पत्रकारों के बीच आईएफजे के द्वारा करवाये गये सर्वेक्षण में इस धारणा का व्यापकर रुप से सिद्ध किया कि ''सत्ता की राजनीति'' बांग्लादेश में संघर्ष का मुख्य स्रोत है। यह निष्कर्ष हाल ही करवाये सर्वेक्षण में भी पाया गया।

उत्तरदाताओं का बहुमत मानता है कि समस्या का समाधान रचनात्मक व्यक्तियों के संपर्कों से किया जा सकता है। जिसमें पत्रकारों का समुदाय सुविधाजनक भूमिका निभाता है। सर्वेक्षण में दिखाई दी भावना थी कि मीडिया को संघर्ष के दौरान ''मानव तत्व'' पर ध्यान केंद्रित करना चाहिये और ''सटीक और अपक्षपात'' तरीके से रिपोर्टिंग करनी चाहिये।

उत्तरदाताओं का बहुमत मानता है कि पत्रकारों का संघ दूसरे नागरिक

---

६ लॉग-सयेद बदरुल अहसान, द मेडियॉकर एंड मैडेनींग, डेली स्टार, २४ मार्च २०१० निकाले - www.thedailystar.net/newDesign/print_news.php?nid=131302. यहां दो राजनीतिक दलों का संदर्भ है- द मुस्लीम लीग एंड जमात-ए- इस्लामी - दोनों ही बीएनपी के सहयोगी दल हैं।

समुदायों के साथ व्यापक गठबंधन बना सकते हैं।

इससे नागरिक और राजनीतिक मुद्दो में दखलअंदाजी करने के लिये दोनो की क्षमता में बढ़ोत्तरी होगी। बहुतों ने लोकतंत्र की बहाली के लिये 1990 के आंदोलन का हवाला दिया, जब पत्रकार संघ और नागरिक समुदाय संगठनों ने 15 सालों से चले आ रहे सैनिक शासन को खत्म करने के लिये आपस में हाथ मिला लिये।

कुछ विशेष स्थानीय मामलों में, जिन्होने उतना अंतर्राष्ट्रीय ध्यान आकर्षित नही किया, ने भी इस सिद्धांत को रेखांकित किया गया। अप्रैल 2001 में, उदाहरण के लिये, पुरबाकोन, चिटगांव में समाचारपत्र पहले अवामी लीग के एक स्थानीय नेता फिर सत्तारुढ पार्टी के द्वारा। इसने विभिन्न पेशेवर निकायों, छात्र संगठनों और नागरिक समुदायों के संयुक्त अभियान का अवसर दिया ताकि दोषियों को सजा दी सके।

पत्रकार संगठनों और नागरिक समुदायों के बीच गठजोड़ का अन्य मील का पत्थर साबित हुआ, तेल, गैस, बिजली और बंदरगाह की रक्षा के लिये राष्ट्रीय समिति का प्रायोजित आंदोलन और 1980 में खुलाना विश्वविद्यालय का आंदोलन। इसी प्रकार जब पत्रकार मानिक साहा और शमसुर रहमान एक अन्य आतंकवादी हमले में मारे गये तब इस तरह का व्यापक गठजोड़ का गठन हुआ।

मौजूदा राजनीतिक वातावरण में यह गठजोड़ का तरीका सही विकल्प कितनी दूर जा सकता है यह एक अन्य सवाल है।

इस मौजूदा प्रोजेक्ट के अतर्गत किये गये सर्वेक्षण में अधिकांश उत्तरदाता यह विश्वास करते हैं कि मीडिया अधिकार तब तक मृत पत्र बना रहेगा जब तक कि संपादक, मालिक और अन्य पत्रकार एक साथ काम नही करते हैं। जब देश की आजादी दांव पर लगी हो प्राकृतिक संसाधनों पर मानव अधिकार, संप्रभु अधिकार की रक्षा करने के लिये, मुक्ति के लिये युद्ध के लिये आदर्श, धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र के मूल्य और युद्ध के अपराधियों की जबावदेही के लिये प्रक्रिया के लिये यह गठजोड़ का तरीका सही या नही। व्यापक गठजोड़ को असलियत बनाने के लिये, मुद्दे जैसे कि पत्रकारों के लिए वेतन बोर्ड के पुरस्कार का कार्यान्वयन और मीडिया से संबंधित सभी काले कानूनों को निरसन ही न्यूनतम कार्यक्रम हो सकता है।

राजनीतिक धरुवीकरण पत्रकारिता की सबसे महत्वपूर्ण बाधा है जो कि अपने मूल्यों के लिए सच है।

बांग्लोदेश में धमकियां और शारीरिक खतरे पत्रकारों के लिये चुनौतियां बने हुये हैं। खुलाना, देश के छह प्रशासनिक प्रभागों में से एक, ने पत्रकारों के लिये सबसे अधिक खतरनाक परिस्थितियों को देखा है। वास्तव में अधिकतर पत्रकारों के अनुसार, आतंकवाद जिसमें मीडिया कार्यकर्ताओं और सामान्य नागरिकों पर दोनो लक्षित और अचानक की गयी हिंसा शामिल हैं, खुलाना क्षेत्र में शुरु हुई। मीडिया के भीतर असुरक्षा की भावना लिये कट्टरपंथी इस्लामी समूहों वामपंथी समूहों के कारण ये खतरे अभी भी है।

बांग्लादेश के हर क्षेत्र में इससे संबंधित समस्याये हैं। चिटगांव प्रभाग में, जिसने निम्न-स्तर के विद्रोह और के कभी कभार जातीय संघर्ष भी देखा था, पत्रकारों के लिये खतरनाक क्षेत्र है। चिटगांव की पहाड़ियों में पत्रकार और मीडिया कर्मी पेशेवर उपकरणों और सामग्री की अनुपलब्धता का सामना करते हैं, इस आधार पर कि इन सामग्री की सामान्यकृत उपलब्धता जातीय संघर्ष का कारण हो सकती है।

आईएफजे परियोजना के पहले चरण में सर्वेक्षण किये गये अधिकांश पत्राकरों को संघर्ष की स्थितियों से अवगत कराया गया। पहले के सालों में संघर्ष की स्थितियों पर दो-तिहाई ने 10 से अधिक स्टोरीज की थी। 2 प्रतिशत से भी कम ने दावा किया कि जब वह अपनी बीट पर थे उन्होने किसी संघर्ष स्थिति का सामना नही किया।

उत्तरदाताओ मे से 60 फीसदी लोगों ने माना कि संघर्ष पर सरकार, पुलिस और सेना के द्वारा मुहैया करवायी गयी सूचना सीमित थी। 36 फीसदी से अधिक लोगों ने माना कि इन सूत्रों से मिली खबर पक्षपातपूर्ण थी। 88 फीसदी लोगों ने माना कि संघर्ष की मीडिया कवरेज पक्षपातपूर्ण थी। आधे से अधिक लोगों ने माना कि वाणिज्यिक हितों के कारण मीडिया पक्षपातपूर्ण रहा। जबकि पांच में केवल एक ने यह सोचा कि मीडिया मालिकों के राजनितिक हित मुख्य कारक थे।

उनके द्वारा सामना किये जाने वाली समस्याओं के लिये संस्थागत उपायों पर एक सवाल के जबाव में, उत्तरदाताओं में से अधिकांश ने कहा कि निवारण का व्यवहारिक व्यवस्था नही है। 80 फीसदी के करीब लोगों ने कहा कि वह स्थानीय संघ की शाखा में, उनके अपने मीडिया कार्यालय में या फिर स्थानीय प्रेस क्लब में शिकायत दर्ज करवा सकते हैं, लेकिन इनमें से कुछ ही पर ध्यान दिया जाता है। जब मीडिया मालिक अपनी खबरों की कवरेज की प्राथमिकता पर फैसला करते हैं तब कोई रास्ता नही है कि कोई पत्रकार उसको बदल दे।

अध्ययन में शामिल कई पत्रकारों के द्वारा संस्थागत बदलावों का सुझाव दिया गया, जिसमें शामिल है

- क्षेत्रीय और अंतरराष्ट्रीय निकायों जो संघर्ष की स्थितियों में पत्रकारों के अधिकारों के उल्लंघन के प्रत्येक उदाहरण के नोट लेंगे और संबंधित अधिकारियों और उपचार संस्थान एजेंसियों पर दबाव बनायेंगे।
- नैतिक प्रथाओं और संपादकीय चुनाव की देखरेख के लिए सभी मीडिया संगठनों के भीतर एक लोकपाल संस्था।
- पत्रकारों की शिकायतों पर ध्यान देने के लिये बांग्लादेश प्रेस परिषद के भीतर एक पर्याप्त शक्तियों और संसाधनों के साथ, सेल का निर्माण।
- पत्रकार निकायों, मीडिया मालिकों के संगठनों और सरकार की सदस्यता के साथ एक विशेष आयोग या अधिकार बनाना जो मीडिया के क्षेत्र में व्यापक निरीक्षण अभ्यास करेंगे
- पत्रकारों के संगठनों द्वारा गंभीर प्रशिक्षण कार्यक्रम के संस्थान जिसकी प्राथमिकता मीडिया नैतिकता और निष्पक्षता के मुद्दों हो

कहने की जरुरत नही, यह सभी सुझाव देश की दो मुख्य राजनीतिक पार्टियों की आवश्यकताओं के बीच दब कर रह गयी- जो कि अधिक रचनात्मकता से संलग्न होनी चाहिये थीं और अपनी दुश्मनी को नागरिक समाज के विघटन का कारण नही होने देना चाहती थीं। इसे जरुरत है, कम से कम, देश के ताजा हाल पर, मुक्ति के लिये युद्ध के मूल्यों पर आपसी सहमति की ताकि नागरिक समाज संस्थाएं उनकी दुश्मनी का शिकार न हो जायें।

भारत

मजबूत नींव के बावजूद भी समस्याएं बनी हुईं है

भारत में प्रेस की स्वतंत्रता के लिए कड़े संवैधानिक प्रावधान और न्यायिक प्रक्रियाऐं हैं। लेकिन उपमहाद्वीपीय विस्तार वाले भारत देश में जहां क्षेत्रीय है वहां प्रेस की स्वतंत्रता एक श्लोगन मात्र है। ऐसे ही देश के कई ऐसे हिस्से हैं जहां प्रेस की स्वतंत्रता को मीडिया के बेरोक टोक काम करने के तरीके और काम के व्यवसायिकरण से खतरा होता है। भारत की विशालता के कारण, भारत के विशेष क्षेत्रों में मीडिया की आजादी कोई मुद्दा नहीं है लेकिन इसकी राजधानी और बड़े महानगरों में जहां पर राष्ट्रीय जनमत में उतार चढ़ाव आता रहता है। कई ऐसे अवसर आए हैं जब व्यवसायिक लोगों की हिम्मत और सहमति एक समस्या पर एक नहीं होती पर सुदूर क्षेत्रों के लोगों में जो राष्ट्रीय राजधानी में रहते है वो सामुहिक रुप से एकजुट नजर आते हैं।

2010 के जुलाई महीने के शुरुआत में आईएफजे के सहयोगी भारतीय पत्रकार संघ के इकाई दिल्ली पत्रकार संघ ने पत्रकारिता को मजबूत बातावरण देने के लिए जमू कश्मीर में लंबे समय से चले आ रहे सिविल गड़बड़ी को देखते हुए एक मजबूत बयान दिया। कश्मीर घाटी के शहरों में कई दिनों तक कर्फ्यू के बाद जून के आरंभ से 7 जुलाई तक व्यापक प्रदर्शन शुरू हो गए, इसके बाद आर्मी को बुलाया कर कर्फ्यू को और आगे बढ़ाया गया ताकि नागरिकों के आंदोलन को रोका जा सके इसके साथ ही यह नियम बना कि मीडिया को अब पास नहीं दिया जाएगा। कश्मीर के सभी मीडिया अधिकारी अपने घरों तक सीमित हो गए। राजधानी श्रीनगर के फोटोग्राफर और कैमरा मैन पर हमला किया गया क्योंकि वो उस दिन की घटनाओं को अपने कैमरे में कैद करना चाहते थे पर कुछ के कैमरे सुरक्षा अधिकारियों द्वारा तोड़ दिए गए।

ऐसी ही घटना राजधानी में 6 जुलाई को फिर हुई जब 12 फोटोग्राफर जो स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मीडिया के लिए काम कर रहे थे पर हमला किया सुरक्षा बल के लोगों ने क्योकि वह लोग उन्हें विरोध प्रदर्शन को रिकार्ड करने से रोक रहे थे. फोटोग्राफरो और न्यूज कैमरा मैन पर हुए हमले के बाद वरिष्ठ पुलिस अधिकारी ने बयान दिया कि अगर मीडिया इन प्रदर्शनों को विशेष कवरेज नहीं देगी तो यह प्रदर्शन जल्द ही ठंडी पड़ जाएगी। भारत के राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में स्थित दो महत्वपूर्ण संस्थान प्रेस क्लब आफ इंडिया और द एडिटर गिल्ड ने कश्मीरी पत्रकारों के स्वतंत्रता की लड़ाई में हिस्सा लिया. नई दिल्ली के व्यवसायिक संगठनों द्वारा केंद्रीत और अपेक्षा से अधिक शक्तिशाली प्रतिक्रिया ने कश्मीर के पत्रकारों को एक अभूतपूर्व एकजुटता का अनुभव कराया। दो दशक से समस्याओं का सामना कर रहे इस क्षेत्र में पहली बार पांच विभिन्न प्रकार के संगठन एक मंच पर एक जुट हुए और एक साथ आगे बढ़कर अपने व्यवसाय से जुड़े लोगों के प्रारभिक स्वतंत्रता की मांग की मांग करने वाले संगठनों में थे द कश्मीर प्रेस गिल्ड, द कश्मीर प्रेस ऐसोशिएसन, द कश्मीर प्रेस फोटोग्राफर एसोशिएसन, द कश्मीर वीडियोग्राफर एसोश्एिसन, और द कश्मीर पत्रकार कारपोरेशन संगठनों की यह एकता अतीत में फूट का सूचक रहा है लेकिन उनका एक जुटता की शक्ति में जगा विश्वास उनके नई पहल में छुपी अपार क्षमताओं की ओर इशारा करता है। संगठनों की इस संयुक्त कारवाई ने अंतरराष्ट्रीय

कश्मीर के पत्रकारों के लिए हाल ही में हुई अस्थिरता के चलते बातचीत में कठिनाई का समाना करना पड़ा क्योंकि इस दौरान उन पर कई तरह के नियंत्रण लगाए गए थे।

समर्थन का रास्ता साफ कर दिया. भारत में सशक्त संगठनों ने काफी संवेदनशीलता के साथ प्रतिक्रिया दी।

भारतीय प्रेस परिषद जिसका गठन जनादेश के साथ मीडिया के आचरण और नैतिकता की देख रेख के लिए किया गया था, लेकिन क्या यह मीडिया की स्वतंत्रता और पत्रकारों की रक्षा कर पा रहा, क्या इसने घटनाओं का संज्ञान लिया और कश्मीर स्थित निकायों से यह कहा कि वहां घटी सभी संबंधित घटनाओं का वर्णीत ज्ञापन मंगवाया। पत्रकारों के काम करने का माहौल अब बहुत हद तक सुधरा सा लगता है लेकिन जब सितंबर 2010 के शुरुआत में हुई घटनाओं पर नजर डालते है जब इद-उल-फितर के मौके पर जनता ने सड़कों पर विरोधप्रदर्शन किया और नवंबर 2008 में इंफाल में एक युवा पत्रकार कोनसम रिशिकांत सिंह को सुरक्षा बलों ने मार डाला। दो दिन बाद ही कश्मीर घाटी दो दशको में हुई सबसे भयानक जनसंहार की गवाह बनी।

जब एक विशाल भीड़ सड़क पर न्यूर्याक में हो रहे इस्लामीक शास्त्र के पवित्रा पर उठाए गए सवाल के लिए विरोध प्रदर्शन कर रही थी तब एक अनुमान के मुताबिक इसे रोकने के लिए पुलिस द्वारा की गई फायरिंग में 15 लोग मारे गए थे। दिल्ली पत्रकार संघ ने हाल ही में भारतीय संघ सरकार के सामने भारत के पूर्वी क्षेत्र में मणिपुर के पत्रकारों की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए विरोध प्रदर्शन किया। 17 फरवरी 2010 को इस मुददे पर पहले से सक्रिय द एडिटर गिल्ड आफ इंढिया ने मणिपुर सरकार द्वारा असमानता बरतने के कारण स्थानीय मीडिया के स्वतंत्रता की रक्षा के पक्ष में एक मजबमत बयान दिया। गैर राज्यीय उग्रवादी समूहों से मीडिया की स्वतंत्रता की रक्षा कर पाने में स्थानीय सरकार के खुद को असक्षम पाने के कारण यह बयान दिया गया।

प्रेस की स्वतंत्रता पर दबाब या रूकावटः

मणिपुर के पत्रकारों की दुर्दशा पर गंभीर चिंता व्यक्त करते हुए गिल्ड ने मणिपुर की सरकार और मीडिया के बीच उत्पन्न हो रही खाई को पाटने के लिए उपचारी उपाय करना चाहिए। 2009 के मध्य में जब आईजेएफ ने मणिपुर के पत्रकारों से जुड़ी पूछताछ की सूची बना रहा था तब स्थिति इतनी जयादा गंभीर थी की मणिपुर के राजधानी इंफाल स्थित वरिष्ठ संपादक आत्मरक्षा के लिए हथियार रखना पड़ा संपादक जिसने पूरे आत्मविश्वास से बताया वह पूर्णरूप से जागरूक था कि अगर वह एक आम नागरिक के रूप में हथियार रखता है तो इसके लिए उसे अर्थदंड देना पड़ सकता है। लेकिन वह सभी सहायकों की सुरक्षा का दावा कर सकता है। अगर वह आत्मरक्षा के लिए एक बार हथियार उठा लेता है। लेकिन वह भारत के सबसे अधिक अव्यवस्थित राज्य में एक संपादक होने के कारण उत्पन्न हुई व्यवहारिक कठिनाइयों के सामने पत्रकारिता से जुड़े सिद्धांतो का त्याग करने को तैयार है। भारत में इन घटनाओं से सुपरचित है वैसे ही जैसे 1980 के दशक में पंजाब में उभरे उग्रवादी घटनाओं के बाद वहां के संपादकों ने सशस्त्र गार्ड की मांग करते थे। मणिपुर पत्रकारों के साख के लिए उनहोंने इस बार में बात करने के बजाय - इसके बजाय दूसरा विकल्प पर सक्रिय रूप से बात नहीं की है। कारण यह है कि जैसा आशिंक रूप से वरिष्ठ संपादक ने बताया कि और उन्हे यह आश्वासन सय समाज दिया कि उनके साथ हैं तब भी जब सशस्त्र उग्रवादी गुट उन्हें जान से मारने की धमकी देते है।

2010 के मई के मध्य में थुइनगलग मुइबा लंबे समय से चले आ रहे नागा विद्रोह के नेता मइबा एक अलग राज्य नागलिंब और ग्रेटर नागालैंड जिसमें सभी नागा प्रकृतिक क्षेत्र को भी शामिल करने की मांग कर रहा हो। मइबा मणिपुर राज्य के अन्य सजातियों में नई अशांति उत्पन्न होने के डर से मणिपुर सरकार ने मइबा के वहां जाने पर प्रतिबंध लगा दिया। मइबा के सहयोगियों द्वारा नागालैंड -मणिपुर के बाहर किए गए प्रदर्शन की आग में दो लोगों की मृत्यू हो गई। मइबा का राजनीतिक दल द नेशनल सोसाइटी काउंसिल आफ नागलिम (एनएससीएन) ने नागालैंड से जाने वाले हाइवे को बंद कर दिया। इसी हाइवे से मणिपुर को चीजे जाती थी। इस वजह से मणिपुरमें खाने के भंडार और अन्य जरूरी चीजें लोगों को मिलना बंद हो गई। इससे मणिपुर में चीजों का दाम बढ़ गया। तब राज्य सरकार ने इसके समाधान के लिए दूसरा रास्ता चुना उन्होंने आवश्यक वस्तुओं की ट्रकों को आर्मी के ट्रकों के साथ भेजना शुरु किया. लेकिन यहां चल रहा बंद जो तीन माह तक चला इसके पहले भारतीय संघ सरकार के सशस्त्र कारवाई के कारण बंद में थोड़ी ढील मिली. इससे मणिपुर की सार्वजनिक जीवन की लय मध्म पड़ गई थी।

पत्रकारों के साथ-साथ नागरिक समाज का हर वर्ग दुश्मनी के इस असाधारण प्रकोप से पीड़ित था। कमी का झटका पत्रकारिता को तब लगा जब मणिपुर के कई दैनिक अखबारों के अखबारी कागजों की आयोजित सूची को नाकाबंदी के कुछ हफ्ते बाद कमी का एहसास हुआ। सचमुच इस नाकांबदी में तब जा कर ढील हुई जब इंफाल के कई संपादकों ने बंदी के समाप्त होने पर विचार किया. स्थानीय प्रेस से इसके संबंध के रूप में देखे तो मणिपुर नागरिक समाज का व्यवहार स्पेट्रम के अनुसार चलता रहा।

मई के मध्य में मुइबा के गृह जिले उखरूल के लोग उसके विद्रोह में हिस्सा लेने आए। मणिपुर की घाटी में लोग प्रेस को अपराधी के रुप में देखते हैं। मैताई जातीय समुह के लिए घर के रुप में जाना जाने वाला अन्य जनजामियों के लिए असंवेदनशीलता की घाटी बन गया। एनएससीएनकी बंदी ने आम जनजीवन को गंभीर रुप से प्रभावित किया मणिपुर की घाटी की ओर लोगों के जाने से राज्य के पहाड़ी जिलों में आवश्यक सामानों की पूर्ति ठप्प पड़ गई। अखबार भी उन सामानों में शामिल था।

जो नाकांबदी के शिकार हुए नागरिक समाज का समूह और पत्रकारिता से जुड़े संगठन जो उखरूल क्षेत्र में रहते थे उन्हे 'विरोधी नाकाबंदी के उग्रवादी समुहों ने मणिपुर घाटी से बरगला दिया। अंतर-जातीय एकता पर जोर देते हुए अखिल भारतीय पत्रकार संघ-जिसका मुख्यालय इंफाल में है ने राज्य के अखबारों और संबंधीत मीडिया के अखबारों के जब्त किए जाने की निंदा की। बुनियादी सोच इस बात पर जोर देती है कि विचारों और सूचनाओं का आदान-प्रदान उसका झुकाव जो भी हो-उसको अंतरजातीय या सांप्रदायिक प्रतिद्वंछिता का बंधक नहीं बनाया जाना चाहिए। उखरूल जिले के पत्रकार संघ ने भी अखबारों के नाकाबंदी में जब्त होने का पूर्ण विरोध किया[१]।

---

१ इस अंक के घटनाक्रम के निर्माण मणिपुर में पत्रकारों और स्थानीय प्रेस में समवर्ती रिपोर्टिंग, खासकर संगाई एक्सप्रेस और इंफाल फ्री प्रेस के साथ साक्षात्कार पर आधारित है।

मणिपुर-मीडिया के स्वायतता की रक्षा

मणिपुर में उग्रवादी गुटों की संख्या में वृद्धि के साथ, मणिपुर के पत्रकारों ने 2001 में एकजुटता दिखाते हुए आचार संहिता को अपनाने का निर्णय लिया। कुछ संशोधनों के साथ, कोड को जून 2005 में मणिपुर के अखिल मणिपुरी श्रमजीवी पत्रकार संघ ने सहमति दी। कोड कुछ जटिल उद्देश्यों के मिश्रण के साथ लागू हुआ। खबर के प्रसार के प्रक्रिया में संपादकीय स्वायतता को साबित करने और असंतोश की आवाज को उचित कवरेज प्रदान करने और यह सुनिश्चित करना कि मीडिया कठिन परिस्थितियों के कारण हिंसा के कृत्यों को बढ़ावा देने का उपकरण ना बन जाए।

इसके बाद मीडिया की पहली चुनौती थी उस असंतुश्ट आवाज के वैधता की पहचान करना जिसे मीडिया में प्रतिनिधित्व का मौका मिलता, कानून में उनको जो भी स्तर दिया गया होता उससे इतर। एक और बुनियादी आवश्यकता जिसे मीडिया को अपनान की जरुरत है वह है हर बयान और दावे के स्त्रोत के पहचान का होना। एक बार अगर स्त्रोत की पहचान हो गई तो एडिटर के लिए यह फैसला करना आसान हो जाएगा कैसे मजबूत और सही दावे को कवरेज दी जाए। चाहे प्रेस कांफ्रेस का बलाया हो, वैसे ही पहचान के स्त्रोत होना जरुरी है और प्रेस विज्ञप्ति पर विधिवत हस्ताक्षर होना चाहिए और उसके लेटरहेड पर संगठन की मुहर होनी चाहिए। सभी निमंत्रण और प्रेस विज्ञप्ति किसी ना किसी संगठन से संबंधित हो, उदाहरण स्वरुप भी कोई पत्रकार या मीडिया संगठन किसी राजनीतिक पार्टी की ओर से जिम्मेदारी नहीं निभाएगा। जब संगठन द्वारा प्रतिद्वंद्वी दावे किए जाएंगे कि उपर की सभी आवश्कताऐं पूरी की जाऐ तब संपादक अपने विवके का प्रयोग करते हुए निर्णय लेगा जिसका उदाहरण है कि वह ज्यादातर मामले में दोनों को बराबर की जगह देंगे। अगर यहां के दावों में किसी मानव जीवन के खतरे में पड़ने का संदेषा हैं तो संपादक को हक है कि वह किसी भी बयान में से आक्रामक पक्ष को निकाल बाहर कर सकता है।

सभी मीडिया संगठनों और व्यवसायिक पत्रकारों को भारत के प्रेस परिशद द्वारा निर्धारित आचार सहिंता के नियमों का पालन करेंगे। किसी भी असंवेदनषील घटना और व्यक्तित्व के चित्रण में असंवेदीत नहीं होंगे। संपादकों की यह पूर्ण जिम्मेदारी है कि वो किसी खबर के कवरेज और प्रवृति के साथ ही किसी चूक और आयोग जो की एक अपमानजनक बात हो सकती सब चीजों की जिम्मेवारी लेनी चाहिए। जहां ऐसा लगे की कोई वैध अपेक्षा और चिंता किसी विशेष समाचार रिपोर्ट से सांप्रदायिक तनाव और अपराध हो सकता है संपादक को हक है कि वह ऐसी चीजों को नश्ट कर दे या ऐसी सामग्री आने ही ना दे। लेकिन मामूली शिकायतों से जुड़ी चीजों को संबंधित संगठन के संपादक को पत्र लिख कर सुलझाया जा सकता है। एएमडब्ल्यूजेयू पहली ऐसी संस्था या एजेंसी है जिसे किसी पीड़ित व्यक्ति ने संर्पक किया। एएमडब्ल्यूजेयू ने अपने पारदर्षी नियमों और मानदंडों के अनुसार चिंतित शिकायती के समस्या का समाधान किया। और अगर वहां आचार संहिता का उल्लंघन किया गया तो यह संस्था उसके उचित प्रतिबंध का प्रबंधन करेगी।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि एएमडब्ल्यूजेयू के साथ सबसे महत्वपूर्ण कठिनाईयों है आचार संहिता के दोहराव को रोकने के लिए प्रतिबंध बनाना। मुसीबत के अन्य रुप हैं मणिपुर में सत्तारूढ़ राज्य सरकार और सुरक्षा बलों का बेदर्द रवैया। अगस्त 2007 में मणिपुर सरकार के गृह विभाग ने आदेश जारी किया जो किसी भी मीडिया सामग्री को जब्त करने का आदेश देता है जो किसी भी प्रतिबंधित संगठन या जो किसी भी रुप में उनके कर्मियों के लिए सहयोगी हो।

हालांकि उखरुल के भीतर, पत्रकारिता और आम नागरिक के आम सहमति में थोड़ा अंतर दिखता है। जैसे यहां का समुदाय रास्तों को बंद कर रहे हैं ताकि अखबार मणिपुर घाटी तक ना पहुंच सके. नागा लोगों के कथित मांगों के पक्ष में विरोध करना, इंफाल स्वतंत्र प्रेस के मुताबिक नागा जनजाति जो उखरूल क्षेत्र में रहती है। वह मणिपुर घाटी के अखबारों के खबरों से खुश नहीं। तात्पर्य यह है कि आंदोलनकारियों और आम लोगों के बीच सहमति पत्रकारों द्वारा अर्जित राय से बिलकुल अलग है।

एएमडब्ल्यूजेयू ने पत्रकारों द्वारा सही जाने वाली कठिनाइयों को देखते हुए उनके लिए एक सुरक्षातंत्र की मांग की सामाजिक उलझनों की विविधता के अलावा जिसे स्थानीय मीडिया और मीडिया के विश्लेषक यहां के बहुल इतिहास, बहुल संस्कृति और बहुल पहचान के कारण एक अलग पहचान के लिए संघर्ष[2] के रूप में देखते हैं। पत्रकारी समुदाय इस मत पर एकमत बनाने में सफल हुए।

20 नवंबर 2008 एएमडब्ल्यूजेयू ने राज्य के सभी अखबारों को तीन दिन पहले युवा पत्रकार कोनसम ऋषिकांत सिंह के कत्ल के विरोध में सार्वजनिक रुप से एकत्र होने को कहा। 6 दिन तक चलने वाला यह विरोध आंदोलन अनिश्चित समय तक चला। 11 वें दिन बाद ही स्थानीय प्रसाशन ने एएमडब्ल्यूजेयू की मांग मान ली कि ऋशिकांत के हत्या की जांच सीबीआई करेगी जो संघ सरकार के अंतर्गत काम करती है। 17 फरवरी 2010 को एडिटर गिल्ड ऑफने संकेत दिया कि ऋशिकांत की हत्या करने वाले अभियुक्त की पहचान हो गई है। यही यथास्थिति अभी बनी हुई है।

कुछ प्रासंगिक खबरें मौजूद हैं-www.e-pao.net जो लगातार मणिपुर से जुड़ी महत्वपूण खबरें देता है। पहाड़ी इलाकों के लोगों को उनकी वैली के अखबारों से बहुत लगाव नहीं है। इस पर संगाई एक्सप्रेस की रिपोर्ट देखें जो http://www.e-pao.net/GP.asp? src=14..180510.may10 and http://www.e-pao.net/GP.asp?src=14..180510.may10. नाकाबंदी के विरोध में किए गए विरोध के कारण घाटी के अखबारों के वितरण पर असर पड़ा। http://www.e-pao.net/GP.asp?src=19..230510.may10.

२ अंजुलिका थिंगनाम, मीडिया अंडर सीज, मीडिया फंक्सनीग इन एन आर्मड कांफ्लिक्ट सिच्युएशनः ए केस स्टडी ऑफ मणिपुर, सोशल एक्सन, वाल्यूम ५७, नंबर ४, अक्टूबर-दिसंबर २००७, पेज ३८२

कॉनसम ऋशिकांत सिंह मणिपुर का एक युवा पत्रकार जिसकी नवंबर २००८ में मणिपुर की राजधानी में हत्या कर दी गई, जिसने वहां आठ दिनों तक खलबली मची रही, उसके हत्या से जुड़े मामले में जांच थोड़ी आगे बड़ी।

एमडब्ल्यूजेयू किसी समस्या के पूर्व ही मणिपुर के सभी अखबारों को बंद के लिए बुलाती है। मणिपुर के पत्रकार एक या एक से अधिक क्षेत्रीय विरोधियों के दबाब में अपना मत बनाते है और दूसरों का विरोध करते है। एक व्यापक और वास्तविक सब यह है कि राज्य की सुरक्षा अधिकारी यह आग्रह करते हैं कि सभी विद्रोह समुह जो सरकार के रेट की अवहेलना करते हैं उनहें मीडिया के माध्यम से नहीं सुना जाएगा। उन आंदोलनों जो विद्रोही और राज्य प्रषासन के बीच होते है। उसमें अक्सर मीडिया को सहारा नहीं लिया जाता।

जून 2005 में मणिपुर के पत्रकार एकत्र हुए थे कि वे अब सही रिपोर्टिंग ही करेंगे। यह दस्तावेज कई वाद-विवाद और मणिपुर के परिस्थितियों पर आधारित था। रिपोर्टिंग जैसे काम के अखंडता पर गंभीर चिंता की गई। इसके मानक और प्रक्रियाओं को इस संकल्प में वृहद स्तर पर प्रचाारित किया गया कि विद्रोही समुह और सुरक्षा एजेंसियों दोनों को पता होगा कि उनकी सीमा क्या होगी जिसमें मीडिया दोनों के परस्पर विरोधी मांग को समायोजित कर सकने में सक्षम हो। इन सीमाओं से परे जबरदस्ती की मांग में यह कहा गया कि मणिपुर मीडिया द्वारा रैंको के समापन और संभवत बड़े पैमाने पर एक बंद करेगा। फिर भी जैसा कि कोड ऑपरेषन के द्विवशीर्य आंकलन में कहा गया कि एक छोटे सुझाव यह है कि पत्रकारों के जीवन सुरक्षा या व्यवसाय रक्षा के लिए एक प्रभावशाली उपकरण हो सकता। आतंकवादी बड़ी निपुणता के साथ प्रेस के संविधान और नियम में रहकर अपनी विज्ञप्तियां छापते हैं मणिपुर[३] एक ऐसा क्षेत्र है जहां मीडिया का दैनिक काम काफी जोखिम भरा है और खबरों का प्रवाह कई बाहरी दबाब के कारण बिगड़ता रहा है। इसके लिए पत्रकारों को कई खतरों का सामना करना पड़ता है। इस संदर्ष में असम ने भारत की जमीन को शून्य कर दिया है।

३ आईबीड, पेज-३६१

असमः दंड से मुक्ति के लिए एक माहौल

29 जुलाई 2009 असम के सबसे बड़े शहर और राजधानी जो केवल ना कि है गुवहाटी के निचली अदालत में पराग कुमार दास हत्याकांड के दोशी को निचली अदालत द्वारा बरी किया जाना। दास जो उस दौरान असमिया प्रतिदिन के कार्यकारी संपादक थे जो बड़ी तादात में असमी भाशा में वितरीत होती थी। दास एक जाने माने पत्रकार और मानवाधिकार अभियानों में सार्वजनिक रुप से सक्रिय और सरकारी अधिकारियों के सुरक्षा के आलोचक थे। वह असमियों के राश्ट्रीय पहचान की अवधारणा के सक्रिय प्रचारक थे। उन्होंने एक बार कहा था कि असमी लोग भारतीय नियंत्रण से अलग एक संप्रभु अस्तित्व के हकदार हैं। मई 1996 को जब वह अपने बेटे को स्कूल से लाने जा रहे थे तब गुवहाटी के एक व्यस्त इलाके में उनकी हत्या कर दी गई। इसे संयोग कहेंगे या और कुछ की जिस दिन राज्य में नई सरकार ने शपथ ग्रहण किया उसी दिन दास की हत्या हुई। असम के पत्रकारों ने असम पत्रकार संघ और असम श्रमजीवी पत्रकार संघ के प्रतिनिधित्व में एक आंदोलन चलाने के बाद राज्य सरकार से यह वादा लिया किवह दास केस की जांच सीबीआई से कराएगी। इसके बदले में पत्रकार संघ सरकार पर कोई भी स्थानीय दबाब ना डालने का वादा किया। अभियुक्त के बरी होने के कारण बताते हुए न्यायालय ने अपने निर्णय की व्याख्या करते हुए जांच एजेंसी की निंदा की और कहा कि एजेंसी गवाहों की रक्षा और बाहर घट रही घटनाओं को एकदूसरे से जोड़ पाने में असफल रही। जिस वजह से सही सबूत अदालत तक नहीं पहुंचे। और गवाह धमकी के कारण अपने बयान से मुहं कर गए।

1990 के बाद असम में हुए 20 पत्रकारों की हत्या की सूची में दास का नाम भी शामिल था। उल्फा और बोडो जैसे कई उग्रवादी समुहों ने असम में अपने संगठन बना रखे हैं। यह संगठन कभी-कभी आकस्मिक

रुप से एकदूसरे की मदद करते नजर आ जाते हैं। जबकि यह एक-दूसरे से विपरीत राजनैतिक और क्षेत्रीय एजेंडों पर चलते हैं। उल्फा में हुए कइ विघटनों के बाद सभी ने अलग-अलग संगठन बना लिए हैं। जिन्होंने सरकार के सामने आत्मसमर्पण करने के बाद अपने को सुलफा बुलाते हैं। यह सरकार के साथ मिलकर उसके आतंकविरोधी प्रयासों में सहायक की भूमिका निभाते हैं। बोडो समुहों में भी 2003 में राज्य और संघ सरकार के साथ संघर्श विराम के बाद बोडो समुह भी कई भागों में बंट गया। एक समुह बोडो जनजातियों क्षेत्रीय स्वायतता को सुनिश्चित करने के लिए समझौते पर बातचीत कर रहा है। लेकिन अन्य समूह विद्रोह में जुटे रहे। पिफर 2008 में मौजूदा समूहों में विभाजन हुआ इस बात पर कि एक पक्ष सैन्य अभियानों के खत्म करने के पक्ष में था और अन्य इसके विपरीत राय रखते थे। असम में हाल ही में हुए दो और पत्रकार हत्या कांड नवबंर 2008 में जगजीत सेकिया और मार्च 2009 में अनिल मजुमदार का। राज्य के पुलिस का यह मानना था कि यह दोनों ही प्रत्यक्ष रुप से विद्रोह के प्रकट और गुप्त दोनों अभियानों से जुड़े हुए थे। इन संबंधों के उपर व्यापक स्तर पर बातचीत की गई। फिर कुछ लोगों का कहना था कि पत्रकारों का इनसे कोई संबंध नहीं था जिनमें अखबार प्रबंधन और सरकारी अधिकारी शामिल थे। यह एक गंभीर समस्या की ओर संकेत करता है कि व्यापार समूह और राज्य स्तर की एजेंसियां प्रतिबंधित भूमिगत समूहों के साथ संर्पक स्थापित करने के लिए पत्रकारों का गलत इस्तेमाल करते हैं। निर्णायक सबूत इन दोनों हत्यों के लिए इस ओर इशारा करते है कि भूमिगत समूहों का इनसे संबंध है। लेकिन उनहे सामने लाने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है। जिससे इस हत्या के जिम्मेदार लोगों पर आरोप लगाया जा सके।

आजीविका और नैतिक जीवन का संकट

हालांकि ये कानूनी और न्यायिक मामले सुलझ जाएंगे। लेकिन यह पत्रकारिता के एक व्यापक नैतिक रोग की ओर इशारा करता है। भारत के महानगरों में पत्रकारों को अक्सर ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़ता है कि उन्हें अपने सीमावर्ती क्षेत्रों में काम करने वाले मित्रों से कम पैसे, उपयुक्त परिस्थितियों से दूर नियुक्ती पत्र के बिना काम करना पड़ता है।

ना ही मीडिया कंपनी के मालिकों से उनहें यह आश्वासन मिलता है कि अगर वह खबर लेने के दौरान किसी समस्या में फंसते हैं तो उनके मालिक उनकी मदद करेंगे। ऐसा कोई व्यवसायिक नियम नहीं है कि किसी पत्रकार की अपनी कोई राजनीतिक विचारधारा नहीं होती। जैसे वकिल अपने पेषे के नियम के विपरीत अपनी प्रतिष्ठा के लिए हिंसा करते नजर आते हैं। लेकिन असम के पत्रकार यह मानते हैं कि दोनों सैकिया और मजूमदार ने विद्रोहियों से संबंध बनाने के लिए अनेक अनैतिक काम किया। दोनों ही इन समूहों के साथ वितीय लेन देन में शामिल थे। इस प्रकार के काम कर के इन दोनों ने पत्रकारिता की छवि को धूमिल किया। पत्रकारों के सामने इन समूहों से संबंध बनाने के अलावा और कोई रास्ता नहीं होता है। कम पैसे और विषम परिस्थितियों के चलते उन्हें यह करना पड़ता है। आज के मीडिया समुहों को अच्छे पत्रकार की आवश्यकता नहीं होती-वह पत्रकारों के भावी संभावनाओं को प्रकट और गुप्त राजनैतिक राज जानने में बर्बाद करते हैं। जिससे उन्हें आधारभूत सुरक्षा और लाभ मिल सके। पत्रकारिता में यह रोग इतने गहराई में जा चुका है कि आज के पत्रकार जो यह जानते हैं कि असम के अधिकतर समस्याग्रस्त जिलों में अनेक अवैतनिक श्रमसेवक है। इसलिए वह अधिक से अधिक पुरस्कार पाने के लिए और भौतिक लाभ के लिए अनैतिक कामों में आसानी से लग जाते हैं। उल्फा और बोडो समूह के अतिरिक्त असम में अन्य कई उग्रवादी गुटों और राजनैतिक आंदोलन की बहुलता है जो इन विद्रोहियों से अलग हैं। इनमें से अधिकांष जाति आधारित संगठन हैं। जो अपना पाला तेजी से बदलते हैं। एक पत्रकार जो अच्छा खेल खेलना चाहता है। वह अधिकारियों और विद्रोही समूहों के गलत पक्ष से नहीं जुड़ता उसके लिए इन दलबदलू संगठनों का दलबदल एक खतरनाक स्थिति पैदा कर सकता है। यह घटनाऐं सीमावर्ती इलाकों में होने के कारण मुख्यमीडिया की कवरेज से दूर रहती है। इन जिलों से रिपोर्टिंग करना उग्रवादी गुटों के गुप्त खतरों की कभी ना खत्म होने वाली लड़ाई है। जो मानव प्रवृति के अनुकूल है किवह हमेशा आसान रास्तों को ही चुनता है। यहां की स्थिति इतनी विशम हैकि उग्रवादी समुहों के साथ वैध संबंध बना पाना मुश्किल है। सरकारी अधिकारी अक्सर इन भूमिगत गुटों से उनके क्षेत्रों और राजनैतिक मुददो पर बातचीत के लिए आए हैं। लेकिन इन गुटों के मांगों का सटीक चित्रण मुख्यमीडिया नहीं कर पाई क्योंकि इनसे बात करने वाले दल हमेशा आपसी संघर्ष में उलझे रहने के कारण इन मुददों पर एकमत नहीं होपाते। वास्तविकता यह है कि पत्रकारों द्वारा उग्रवादी आंदालन का यह चित्रण उनके लिए खतरा बन जाता है। अगर मीडिया संघर्ष निवारण में सहायक बने तो इन होने वाली बातचीत का सही समाधान मिल सकता है। मीडिया उग्रवादियों और सरकार के बीच शांतिवार्ता के द्वारा इस समस्या का समाधान निकाल सकती है।

जम्मू-कश्मीरः अपने हक की लड़ाई

दो दशकों से जब से आतंकवाद ने कश्मीर घाटी में दस्तक दी है। मीडिया ने इस दौरान राज्य निकायों के साथ बुरे रिश्तों के कारण कई केस देखे। 1996 में जब जम्मू कश्मीर में चुनाव हो रहे थे। उस वक्त मीडिया को कई सारे दबावों से गुजरना पड़ रहा था। 2002 के चुनाव प्रक्रिया में मीडिया को कम दबाव का सामना करना पड़ा। 2008 के आम चुनाव व्यापक सार्वजनिक अव्यवस्था के बीच हुए। इस झगड़े की जड़ था एक धार्मिक ट्रस्ट को जमीन देने के मामले में। जिसकी शुरुआत कश्मीर घाटी में विद्रोह के साथ हुआ था। राजनीतिक संकट में भारी बदलाव आए जब जम्मू में जबावी कार्रवाई शुरू हुई। अभी अव्यवस्था के शुरू हुए कुछ दि नही बीते थे कि कश्मीर घाटी के सभी वरिश्ठ पत्रकारों ने बैठक कर समाधान निकाला कि राज्य सरकार को मीडिया और दोनों राज्य की जनता के साथ पूर्ण पारदर्शिता बरतनी चाहिए। दोनों ही जम्मू और कश्मीर क्षेत्र में चल रहे हिंसा और अराजकता की घटनाओं को साफ-साफ बताना चाहिए। बहरहाल स्थिति बिगड़ी और एक जबरदस्त कर्फ्यू 23 अगस्त को घाटी में लगाया गया। श्रीनगर के अखबार छ दिन तक किसी भी प्रकार की खबर देने में नाकाम रहे क्योकि छ दिनों तक पत्रकारों और मीडिया कर्मचारियों पर गंभीर प्रतिबंध लगा रहा। सुरक्षा निकायों ने स्थानीय केबल आपरेटरों को न्यूज चैनल दिखाने से मना कर रखा था। 24 अगसत को 15 पत्रकारों और मीडिया कर्मियों के घायल

होने की खबर आई जो विशेष सुरक्षा बलों का निशाना बने थे। भारत के विभिन्न हिस्सों से आए कई पत्रकारों के अलावा पीटीआई और यूएनआई के लो भी अपने कार्यालयों तक जाने के कारण घायल हो गए थे। तीन अंग्रेजी अखबारों जो श्रीनगर में स्थित थे ग्रेटर कश्मीर, एतलात, और राइजिंग कश्मीर ने वेबसाइट पर नोटिस निकाला कि वो अपने कर्मचारियों के कार्यस्थल पर पहुंचने में असमर्थता के चलते पेपर नहीं छाप पा रहे हैं। इस समय उर्दू के अखबार भी छप पाने में खुद को असहाय महसूस कर रहे थे। समाचार वेबसाइट भी अपना काम नहीं कर पा रहे थे। इन हमलों और जबाबी कार्रवाईयों के दौरान डेली एक्सेलसिपर जम्मू के शहर से प्रकाशित होने वाले अखबार के कश्मीर में चल रहे विरोध प्रदर्षन के प्रति उदासीनता दिखाने के कारण से इसकी प्रतियां जलाई गई। सघर्शरत कश्मीर के राजनैतिक दलों में उस दौरान एक प्रवृति नजर आई किवह अपने विरोधियों का विरोध कर रहे थे पर जहां कहीं भी उन्हे उनके विरोध से फायदा होता दिखा उन्होंने उनके अवाज का समर्थन किया। इस दौरान कश्मीर की मीडिया एक सवाल से रू-ब-रू हुई वह यह कि आम लोगों की आवाज मीडिया के माध्यम से सुना गया या दबाया गया। सभी विद्रोहो और संघर्षों में यही हुआ। पत्रकारों की सोच से अलग एक मान्यता यह भी है कि लोगों की मांग वही है जो मीडिया ने दिखाया है। जबकि यह एक हद तक क्षेत्र के वशीभूत होकर होता है। कश्मीर में पत्रकारों को विभिन्नतम स्वरुप वाली समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कभी वह स्थानीय समस्या का सामना करते हैं तो कभी राष्ट्रीय या कभी अंतरराष्ट्रीय समस्या का सामना करते हैं। इन सभी विविधता वाली समस्याओं की जड़ में है पाक का कश्मीर के मामले में राजनैतिक हस्तक्षेप। और पाक में चल रही अंतहीन अशांति इसके बने रहने का मुख्य कारण है। संघर्ष के इतिहास पर नजर डालें तो पता चलता है कि भारत के विभिन्न हिस्सों में होने वाली घटनाओं की जानकारी उस राज्य से और उसके सुरक्षा निकायों से मिलती है। हर जगह पत्रकारों पर एक दबाव होता है कि वह पत्रकारों के हिसाब से ही खबर छापेंगे। यह नैतिक आचरण में एक संघर्ष के समान है। पत्रकार के स्वअर्जित खबर और अधिकारिक सूत्रों से प्राप्त जानकारी में अक्सर विभिन्नता होती है। कश्मीर में पत्रकारों को संघर्षो के समाधान के लिए टकराव की भाषा से खुद को दूर रखना पड़ता है। इसके साथ ही मीडिया को सरकारी नीतियों के साथ भी समायोजन करना पड़ता है। अभी तक के पत्रकारिता के अभ्यास और घटनों के रुपों को जिस तरह दिखा जाता रहा है उसे देखकर लगता है कि कुछ कहानियां ऐसा होती हैं जिनका जान बूझ कर प्रचार दबाब के तहत किया जाता है। ये बातचीत की एक लंबी और कठिन प्रक्रिया है। लेकिन कश्मीर मुददे के अंतरराश्ट्रीय प्रभाव और प्रसार के चलते और जनता की समीक्षा के चलते राज्य सरकार के निकायों ने मजबूर होकर जमीनी स्तर पर सोचना शुरू किया। संघर्ष समसधान के बातचीत की यह लंबी प्रक्रिया पत्रकारों की सुरक्षा सुनिश्चित नहीं करती। संघर्ष रिपोर्टिंग के आधारभूत शब्दकोष में तनाव जुड़ा हुआ है। समस्या और विवाद दोनों के बीच विकल्प यह है कि कशमीर की स्थिति पर बात करें और आतंकवाद और उग्रवाद के बीच के विरोधी तत्व को परिभाशित करें। पत्रकारों की भेजी खबरें सामान्यतया संपादित की जाती हैं, उसमें हेडलाइन और उसका पेज पर डिजाइन जम्मू और दिल्ली जैसी जगहों पर किया जाता है। दिल्ली आदि में बैठे पत्रकारों को यह पता नहीं होता कि खबर भेजने वाला उसका सहयोगी किन परिस्थितियों और मजबूरियों में खबर करता हैं। उग्रवादी पत्रकारों और मीडिया पर खुद ही सेंसर लगाते हैं।खबर कहती है कि उग्रवादी समुहों को असुविधा होती है। जबकि उग्रवादी कहते हैं ि कवह हर सवाल काजवाब नहीं देंगे। क्योंकि वो पाक के प्रतिप्रतिबद्ध हैं। इसलिए उनकी सूचना को छापना प्रतिबंधित है। जब कश्मीर के सम्मानित राजनेता को राज्य सरकार उनकी गलत नीति पर धुड़कती हैं या जब आतंकी कैंपों को भारत और उसके विदेषी सहयोगी रणनीति से बंद करवा देते हैं।

मीडिया दिखाती है कि कश्मीर के लोग आतंकियों को अपना दुश्मन नहीं मानते। आमतौर पर पत्रकारों को एक पक्ष की खबर छापने पर धमकी मिलती है इसलिए पत्रकार अपनी सुविधा के लिए दोनों की धमकी से बचने के लिए और जीवन रक्षा के लिए अपने उपर ही प्रतिबंध लगा देते हैं। कश्मीरी पत्रकारों को भी कई बार झूठे आरोपों के कारण कारावास में रहना पड़ा।

आमतौर पर स्थानीय पत्रकार निष्पक्ष और न्यायसंगत खबरों के लिए प्रयास करते हैं। लेकिन प्रस्तुत मामलों में आंदोलनकारियों को धमकी देकर विचलित करने का प्रयास किया गया। दैनिक चट्टान के मकबूल साहिल जिनहें 2004 के सितंबर में उठाया गया। हालांकि उन पर आरोप कभी बनाए नहीं गए। लेकिन उन पर यह आरोप लगाया गया किवह एक शत्रु पड़ोसी राज्य के लिए जासूसी कर रहे थे। कश्मीर ने पत्रकारों ने इन आरोपों के विरोध करने का निर्णय लिया। लेकिन वह लोग इसका प्रभावशाली तरीके से विरोध करने में असफल हुए। इस मामले ने जोर तब पकड़ा जब राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली के पत्रकार समुदायों ने इससे खुद को जोड़ा। तब जाकर साहिल को एक लंबी अंधेरी सुंरग के बाद रोशनी देखने को मिली। ऐसे ही इफ्तिखार गिलानी के जो कश्मीर टाइम्स दैनिक के लिए दिल्ली के संपादक थे। उन्हें भी 2002 में दिल्ली स्थिति उनके घर से पुलिस ने गिरफ्तार किया। तीन महीने बाद उन पर सरकारी गोपनियता नियम के उल्लंघन का आरोप लगाया। उनके विरोध में दो दस्तावेज बनाए गए। वो वास्तव में सार्वजनिक क्षेत्रों में उपलब्ध थे और विभिन्न वेबसाइटों से निकाले जा सकते थे। उसके आरोपों को कई पत्रकार समूहों ने उठाया जोकि कश्मीर व दिल्ली दोनों के थे। जनवरी 2003 में उसे रिहा कर दिया गया सरकार के यह स्वीकार करने पर कि उसपर कोई केस नहीं है। जो अभियान और याचिकाऐं गिलानी की स्वतंत्रता के लिए चलाए गए वह बहुत ही महत्वपूर्ण थे। लेकिन उन्हें इसका फायदा तब मिला जब राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली के पत्रकार समूहों और नागरिक समाज ने उनके लिए पहल की।

भारत के ह्दय स्थल पर माओ विद्रोहः

भारत के केंद्रीय पठारी मैदान -भारत के पांच राज्यों छत्तीसगढ़, उड़ीसा, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र और झारखंड का दुर्भाग्यपूर्ण सच है कि ये सभी क्षेत्र पत्रकारों के लिए खतरनाक हैं। उदाहरण के लिए, अक्टूबर 2009 में प्रमुख आतंकविरोधी अभियान इस क्षेत्र में शुरू हुआ, छततीसगढ़ में पुलिस ने तीन पत्रकारों को नोटिस जारी किया। कि उन्हें रिपोर्ट के सूत्रों के मुताबिक खबर प्रकाशित या प्रसारित करना पड़ेगा।

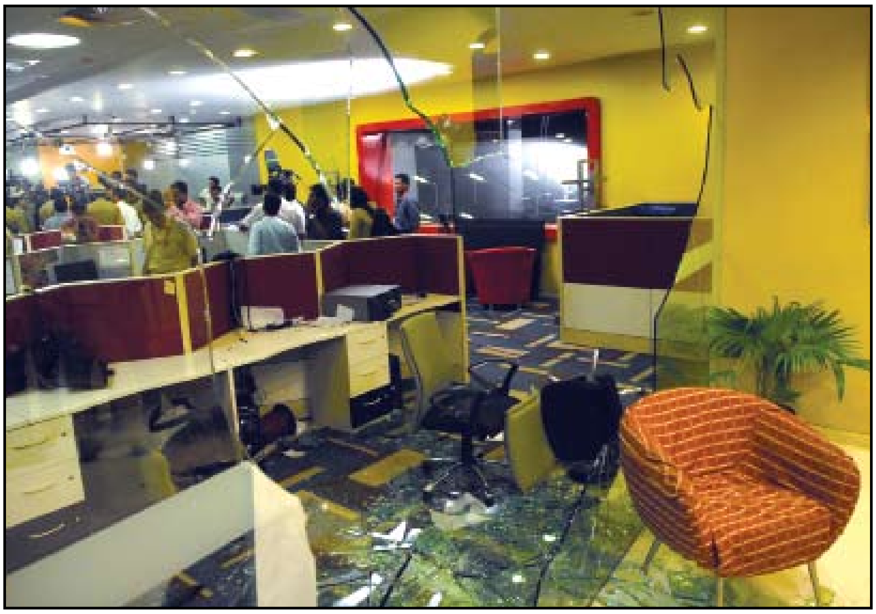

जानबूझ कर किए गए आक्रमणों का खतरा हमेशा मीडिया संस्थानों पर बना रहता है ऐसे ही एक हमले का सामना लोकमत आईबीएन टीवी ने महाराश्ट्र में झेला था जब वह महाराश्ट्र में एक समय सत्ता के गठबंधन वाली पार्टियों पर बातचीत का एक आलोचनात्मक शो चला रहा था।बतपजपबंस वि चंतजल जींज वदबम समक जीम तनसपदह बवंसपजपवद पद डींींजत`जंजम

दो व्यापक रुप से प्रसारित हिंदी के अखबार के लिए काम करने वाले पत्रकारों ने पूछा कि अगर हम निर्दोष ग्रामीणों के एक विरोधी अभियान में देश के दक्षिणी भाग के दूरदराज के क्षेत्र में मारे जाने की खबर सूत्रों के मुताबिक दे सकते हैं। इसी प्रकार के एक माामले में एक टीवी समाचार चैनल के रिपोर्टर ने खुद को काकेर जिले में स्थानीय पुलिस से पहले एक स्थानीय राजनीतिज्ञ के हत्या के लिए जिम्मेदार माओवादियों के दावा करने से संबंधित खबर को पहले प्रसारण के लिए पूछा। राज्य के एक वरिष्ठ अधिकारी द्वारा एक पत्रकार पर गोली बारी करने का आदेश देने के मामला आया कि उसने आंध्रप्रदेश के पड़ोसी जिले छत्तीसगढ़ में चल रहे माओ विरोध कार्रवाई की रिपोर्टिंग करने के कारण गोली मार दी गई।

स्थानीय पत्रकार संघ और छत्तीसगढ़ पत्रकार संघ, सीएसपीएस छत्तीसगढ़ वर्जित जर्नलिस्ट संघ ने 12 अक्टूबर को पत्रकारों के लिए खतरों पर बात की। इसमें एक अभियान शुरू किया गया ताकि आम लोगों को संघर्ष के समय मीडिया की स्वतंत्रता जैसे मुददों पर जागरुक किया जा सके। नक्सल इलाकों में राज्य अधिकारियों द्वारा उत्पन्न असहिष्णु वातावरण में पत्रकार धमकी का सामना करते हैं। मीडिया के कार्य का मतलब दूसरे शब्दों में छत्तीसगढ़ के बस्तर के जगदलपुर में पत्रकार परिस्थितियों के वशीभूत होकर काम करते हैं। सितंबर के 2009 में सुरक्षा एजेंसियों को समझ आयाकि क्यों वह छत्तीसगढ़ के दक्षिणी भाग के गछनपल्ली गांव में एक प्रमुख सुरक्षा अभियान पर बुलाया गया। इसमें 30 माओवादी और 6 सुरक्षा सैनिकों के मारे जाने की खबर मिली। कुछ दिनों बाद एक अक्टूबर 2009 को दंतेवाडा के गोमपाड गांव में एक ऑपरेशन में 12 माओ लोग मारे गए।

जनवरी 2010 में भारत के उच्चतम न्यायालय में एक गवाह को पैर में गंभीर चोट के चलते दिल्ली में एक चिकित्सा संस्थान को सौंपा। जबकि वह राज्य की राजधानी रायपुर से हस्थानांतरित किया जा रहा था। पत्रकार उससे मिलना चाहते थे पर नहीं मिल सके बस्तर के पुलिस महानिदेशक छत्तीसगढ़ के उग्रवादी प्रभावित क्षेत्र के शीर्ष पुलिस अधिकार बताते हैं कि उन्हे पत्रकारों के ओर से यह शिकायत मिली और उन्होंने स्यस्थीकरण पुलिस अधिक्षक को जांच के लिए कहा। उनसे जो स्पस्टीकरण सुनने को मिला वह यह था कि डॉक्टर ने गवाह के इलाज होनेतक उसे मीडिया से दूर रहने को कहा।

17 जनवरी को हिंदू राष्ट्रीय का पहला अखबार बन गया इस खबर से कि पुलिस उसकी गतिविधियों और गोमपाडा के दो गवाहों को नियत्रित करने का प्रयास कर रही है[४]। इसके अलावा इस रिपोर्ट में छत्तीसगढ़ में घटी घटना से जुड़े पलों को रोकने में पुलिस के प्रयास सामने आए। जैसा कि 15 जनवरी को अखबारों में खबर छपी थी कि पुलिस ने दंतेवाडा से कोंटा के हाईवे पर छापा मार इसके करीबी मुख्यालय जो गोपमाड में था वहां गाड़ी रो कर यात्रियों से पूछताछ की। हिंदू का रिपोर्टर जो दंतेवाडा के दो पत्रकारों के साथ अनिल मिश्रा नई दुनिया और यशंवत यादव एनबीटी के साथ थे। जिन्हें हिरासत में लिया गया था ने बताया कि गोपमाड गांव नक्सल विरोधी अभिशन के बाहर था।

मिश्रा और यादव जो कि सीएसपीएस के सक्रिय कार्यकर्त्ता है। उनका घटना के बारे में यह कहना था कि सिानीय मीडिया गोपताड की घटना को प्रोत्साहित करने में असमर्थ थी उन्हें उस स्थान तक ना पहुंचने देने का काफी अच्छा प्रबंध था और उन्हें सही सूचना भी नहीं मिल रही थी। 2009 के बादसे वहां अच्छी रिपोर्टिंग के लिए माहौल नहीं रह गया जब एक बड़ा नक्सल सुरक्षा अभियान शुरु किया गया। अंत में तब से सशस्त्र टकराव में यहां बढत हुई तभी से सरकारी प्रवक्ता ने यह चेतावनी दी कि यह सूचना सार्वजनिक की जाती है कि माओवादी भारत के आंतरिक सुरक्षा के लिए खतरा बन गए हैं। कई संस्करणों और लंबे इतिहास वाले द हिंदू ने गोमपाडा घटना के संदर्भ में खतरा उठाया लेकिन स्थानीय मीडिया ने छोटे और अर्थिक लाभ के कारण चुप्पी नहीं तोड़ी। इस संबंध में लोकल मीडिया के लिए परिदृश्य जुलाई 2009 में बदले जब आतंकविरोधी अभियान एक नए जोरदार चरण के साथ शुरु हुआ।

तुलनात्मक रुप से, जनवरी 2009 में जब छत्तीसगढ़ के दक्षिण में सिंघराव के गांव में सुरक्षा ऑपरेशन हुआ जिसके बाद गोमपाड की घटना घटी जिसमें पुलिस ने सक्रिय उग्रवादियों के बजाय मासूम निर्दोश आदिवासियों को अपना निशाना बनाया तब लोकल मीडिया ने समाचार छापने के लिए और उससे लोकल नागरिक समाज को जागरुक करने के लिए उच्च न्यायालय में एक यााचिका दायर की जिसमें इन घटनाओं के लिए उन्होंने राज्य सरकार से जबाब देही मांगी। साफ तौर

---

४ द हिंदू के नए वेबसाइट पर इसे देखें इस रिपोर्ट के लिए-http://www.thehindu.com/2010/01/17/stories/2010011761241000.htm

पर माओवादी क्षेत्रों में प्रेस को नए अवतार की जरूरत है ना कि जनता की तरह असुरक्षित मन की जैसा कि जुलाई 2003 के बाद वहां माहौल बन गया हैं।

सुरक्षा कानून है असुरक्षा की नस्लः

विशेश सुरक्षा नियम और सार्वजनिक सुरक्षा एक्ट दोनों को संघर्शरत क्षेत्रों और कश्मीर में सशस्त्र सेना को विशेष अधिकार एक्ट कश्मीर और उत्तरपूर्वी क्षेत्रों में और छत्तीसगढ़ में विशेष पब्लिक सुरक्षा एक्ट लागू किया गया है। इन कानूनों में कुछ सामान्य विशेषताए हैं जिसे लागू करने में सुरक्षा निकाय कानून के उल्लंघन के स्थिति में कड़े दंड देंगे। गैर कानूनी गतिविधिया को परिभाषित करना कठिन है क्योंकि इसका विस्तार ज्यादा है। गैर कानूनी गतिविधयिों को परिभाषित करना एक कठिन काम है और जब पत्रकार उग्रवादियों के इन गतिविधयिों की तथ्यात्मक कवरेज करते हैं तो उन पर इन प्रतिबंधित संगठनों को सहायता करने और उकसाने का आरोप लग जाता है।

पत्रकार कभी-2 माओवादी विद्रोहियों के क्षेत्र में प्रशासन से जुड़े सामान्य मुददों की रिपोर्टिंग में घबराते हैं। जबकि वास्तव में यह कार्यालय के समझबूझ का हिस्सा है-वरिष्ठ से वरिष्ठ अधिकारी जैसे प्रधानमंत्री और गृहमंत्री इस बात का समर्थन करते हैं कि प्रशासन के संस्थानों को माओ विद्राही इलाके में गंभीर रुप से व्यवस्था का ध्यान रखनी चाहिए। यहां हिंसा के लिए सचमुच राज्य निकाय जो कि सुरक्षा और सामाजिक कल्याण की व्यवस्था के लिए बनाई जाती है क्रमीक अव्यवस्था के कारण है। सार्वजनिक जांच का असर यह है कि दूरदराज के समस्याग्रस्त इलाकों में तैनात अधिकारियों-असुविधा के चलते उपलब्ध सुविधाओं सेध्यान हटाने के लिए माओवादियों की सहानुभूति के लिए आलोचक पत्रकारों पर दोशारोपण करते हैं। पत्रकारों को अक्सर उन क्षेत्रों में भी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है जो पारंपरिक रुप से संघर्ष क्षेत्र नहीं समझे जाते हैं। उदाहरण के लिए समीउद्‌दीन, अलैस नीलू हिंदी दैनिक अमरउजाला के लिए लखीमपुर खीरी जिले के उत्तरप्रदेश के उत्तरी भाग के संवाददाता थे। उन्हें 2004 के शुरुआत में स्थानीय पुलिस द्वारा विभिन्न समय पर धमकी मिली, और मई 2005 में अपने काम से घर के रास्तें में उसका सामान छीन लिया गया उस व्यक्ति द्वारा जिसे विशेष पुलिस समूह का व्यक्ति माना जाता था। समुउद्‌दीन को इस घटना के बाद एहसास हुआ कि उसके द्वारा स्थानीय पुलिस द्वारा निर्दोश लोगों के उत्पीड़न के कई दस्तावेज रिपोर्ट करने की श्रृंखला छापी थी। मई 2006 में जब उसका अपहरण हुआ तो उसके केस की जांच पड़ताल भारत के राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के हाथ में गई जो उसके लिए घातक था, लेकिन एहतियात के तौर पर वह पहले ही ऐसे किसी संभावित घटना के लिए औपचारिक शिकायत दर्ज करा दिया था। एक बार जब उसका मामला राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के विचाराधीन था तभी समुउद्‌दीन के बंधकों ने उसे छोड़ दिया। एनएचआरसी ने केस के बंद होने के करीब पांच साल बा फैसला दिया, यह एक असाधारण रिपोर्ट थी जिसमें कहा गया कि एक पत्रकार को अधिकार है कि वह अपनी रिपोर्ट और सूचना दे सकें। इसने उत्तर प्रद्रेश सरकार को आदेश दिया कि वो समुउद्‌दीन को 500,000 राशि हर्जाने के रुप में दें और छ हफ्ते के भीतर एक अनुपालन रिपोर्ट जारी करे।

इस केस में एक महत्वपूर्ण मोड़ तब आया जब भारतीय प्रेस परिशद ने समीउद्‌दीन के मामले को सुना और पांच साल तक उसकी सुरक्षा करने का काम राज्य सरकार को दिया और उसपर छ महीने की रिपोर्ट भी मांगी। पीसीआई जो इस मामले में अपने तरीके से पूछताछ कर रही थी उसने समीउद्‌दीन के मामाले को एक दुर्लभ मामला बताया जिसकी गंभीरता से किए से जांच किए जाने की बात की।

प्रेस स्वतंत्रता की रक्षा के लिए राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग और पीसीआई द्वारा उठाए गए सख्त कदम ने ऐसे ही विभिन्न मामलों को आगे आने के लिए जमीन प्रदान की। हालांकि इन निकायों के निर्णयों का कोई तर्कसंगत पैमाना नहीं है। तथ्य खोजने और अधिनिर्णयन की लंबी प्रक्रिया जो कि जरुरत की स्थिति में भी अपनी उपयोगीता का पालन करने की कोशिश करते हैं। 2007 में पीसीआई ने जब उसे सशस्त्र विद्रोही गुटों से पत्रकारों के सामने आने वाली धमकियों में एक खतरनाक वृद्धि से जुड़ी रिपोर्ट मिलने के बाद असम और उत्तर पूर्वी राज्यों में प्रेस स्वतंत्रता के लिए एक जांच टीम का गठन किया। इस जांच के निष्कर्ष, इसमें दिए गए सिफारिशों के साथ 2007-08 के पासीआई के वार्शिक रिपोर्ट में प्रकाशित किया गया[५]।

पूरे भारत के पत्रकारों ने पीसीआई और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अधिकार का उपयोग अपने अधिकारों की रक्षा के लिए किया। कुछ क्षेत्रों में राज्य के मानवाधिकार आयोग भी प्रेस की सवतंत्रता के रक्षा में खड़े हो जाते हैं।

आतंकी हमले और मीडियाः

13 फरवरी 2010 को भारत की वाणिज्यिक राजधानी मुंबई से 220 किमी दूर स्थित शहर पुणे के एक रेस्तरां में बम फटा। भारत और पाक इस समय एक नए रिश्ते की शुरुआत करने के लिए अपने भयानक आपसी इतिहास से उभरक कर कुछ मुद्दों पर समझौता करने के लिए बातचीत बात कर रहे थे।

मुख्यधारा के ज्यादातर मीडिया ने अपनी कमेंट्री में एक सक्रिय प्रयास में पुणे विस्फोट को पड़ोसी देश की करतूत बता कर सुलह की संभावनाओं पर पानी फेर दिया। प्रेस के पत्रकारों को जो कि उन हॉस्पीटल में जाने की मांग कर रहे थे जहां पुणे विस्फोट के घायल लोग भर्ती थे वहां पत्रकारों के जाने पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। अगले दिन पुणे के पुलिस आयुक्त ने एक प्रेस कांफ्रेस बुलाया जिसमें उन्होंने सभी बातों सेजुड़ी प्रतिक्रिया संक्षेप में बताया। उन्होने अपने पुलिस बल से जुड़े सवालों का कोई जवाब देना जरुरी नहीं समझा। उनकी बर्खास्तगी से जुड़े प्रेस के किसी भी दवावे को मानने से इंकार कर दिया कि उन्होंने बम विस्फोट के गवाहों तक प्रेस को ना जाने के निर्देश दिए थे। पुणे के शीर्ष पुलिस अधिकारी ने कहा कि मीडिया को जानबूझ कर दूर रखा गया ताकि गवाहों को खतरे में डाले बिना जांच की जा सके। नेताओं को वहां जाने से मना इसलिए नहीं किया जा सका क्योंकि वह पीड़ितों तक राहत सामग्री पहुंचाने के व्यवस्थापक हैं। विस्फोट के दो सप्ताह बाद, पुणे

५ रिपोर्ट देखने के लिए देखें http://presscouncil.nic.in/HOME.HTM

पुलिस के असफलता पर सवाल उठने लगा कि इतने दिन बाद भी वह दुर्घटना को अंजाम देने वाले अपराधी तक नहीं पहुंच पाए थे।

24 मई को एक व्यक्ति को संदिगघ बताकर पुलिस ने गिरफ्तार किया। लेकिन 15 जून को सत्र न्यायालय ने पुलिस द्वारा उपलब्ध सबूतों से आश्वस्त ना होने के कारण उसे जमानत पर रिहा कर दिया। भारत पिछले 10 सालों से अन्य देशों की अपेक्षा आतंकवाद के निशाने पर ज्यादा रहा है। दिल्ली में संसद परिसर में दिसंबर 2001 में हुआ आतंकी हमला और फिर नवंबर 2008 में भारत की वाणिज्यिक राजधानी मुंबई में कमांडो स्आइल में हुआ हमला इसके अतिरिक्त भारत के अन्य शहरों में होने वाले हमलों में आतंकियों का निशाना रहे शहरी लोग और उनके जीवन से जुड़ी सुविधाऐं इन्होंने जान बूझ कर जान-माल को क्षति पहुंचाया और इसके द्वारा जनता के मन में अपने लिए डर को जगह देने की कोशिश की। इस दौरान केंद्रीय सरकार द्वारा आतंकवाद निरोधक कानून के रोकथाम और कई राजनीतिक गुटों पर प्रतिबंध लगाने और आतंकवाद के आरोप में कई लोगों के खिलाफमुकद्मा चलाते देखा गया। इस दौरान पुलिस बलों को और सुरक्षा एजेंसियों ने कुछ विशेश शक्तियां अर्जित की। आतंकां खतरों से निपटने के लिए उन्हें आमतौर पर सूचना के प्रवाह पर प्रतिबंध और गिरफ्तारी की शक्तियां मिली। अभी तक मीडिया कई आतंकी हमलों से जुड़े जांच से इतर काफी महत्वपूर्ण तथ्य उजागर कर चुकी है। दिल्ली पत्रकार संघ आतंकविरोधी अभियानों में घटी घटनाओं में मीडिया के रिपोर्टिंग जैसे महत्वपूर्ण पक्ष का अध्ययन कर रही है-सितंबर 2008 सशस्त्र मुठभेड़ में दिलली के दक्षिण-पूर्वी उपनगर जामिया में दो युवकों की गोलीमार कर हुई हत्या पर-अताया गया की कैसे आतंकवाद को मीडिया ने एक विशेष धार्मिक समुदाय के साथ जोड़ कर उसकी सामाजिक छवि को आधात पहुंचा रही है[६]। मेल टुडे सुबह का टेबलॉयड अखबार जो तेजी से नई दिल्ली के दैनिक अखबारों के बाजार में अपनी जगह बना रहा है ने सशस्त्र मुठभेड़ की संदिग्ध परिस्थितियों को साफकरने के लिए कहानियों की एक श्रृंखला छापा। बहुतायत सबूत के साथ यह बताने कि कोशिश की कि पुलिस बल ने फायरिंग में मारे गए निर्दोष लोगों की हत्या से बचने के लिए उन्हें आतंकीवादियों से संबंधित बताकर मार डाला[७]।

आमतौर पर, सुरक्षा बलों की मानसिकता सूचना के प्रवाह पर प्रतिबंध लगाना है। जबकि नागरिक का हित इसे ज्यादा से ज्यादा जानने में है। इसलिए पुलिस एजेंसियों का काम हैं कि वो सार्वजनिक हित के एजेंट के रुप में काम करें जो उन्हें करना चाहिए। जब मुंबई में नवंबर 2008 में कई जगहों पर एक साथ आतंकी हमले हुए तब मीडिया की विश्वसनीयता के उपर सवाल उठे वैसे ही जैसे राज्य निकाय आकस्मिक व्यय छेलने के लिए तैयार रहते हैं। फिर से डीयूजे की मीडिया के आतंकवाद के प्रति प्रतिक्रिया से जुड़े महत्वपूर्ण और विश्लेशणात्मक अध्ययन[८]। मुंबई हमलों के पहली सालगिरह पर मुंबई संघ के सदस्य ने बड़ा उचित सवाल पूछा कि अगर न्याय संघर्ष और त्रासदी के चक्र को तोड़ देगी तो मीडिया के लिए यह बात शुरु होगी[९]।

भारत पाक संबंध और मीडियाः

सीमा पार से सिंधु नदी प्रणाली में बहता पानी हाल ही में भारत और पाक के बीच एक विवादस्पद मुद्देके रुप में उभरा है। तकनीकी जटिलताओं के चलते मीडिया सिंधु नदी के पानी के समझौते से जुडें मुख्य विंदूओं पर प्रकाश डालने में असमर्थ रहा जो 1960 में भारत और पाक के बीच संपन्न हुआ था। लेकिन हार्वर्ड विश्वविद्यालय के जल संबंधी विशेशज्ञ ने कई बाते कहीं दिल्ली में रहते हैं और भारत और पाक दोनों में काम करते हैं मैं एक प्रकार के विरोधा भास का मारा हुआ हूं। एक देश में जबरदस्त लोकतंत्र है तो दूसरे में सैनिक शासन है। लेकिन पाक का एक महत्वपूर्ण अंग उसका मीडिया नियमित रुप से पानी के मुद्दे पर भारत के विचार देता रहा लेकिन भारतीय मीडिया ने कभी ऐसा नहीं किया[१०]।

विवरण में प्रेक्षक ने पाया कि दो देशों की मीडिया सरकारी आदेश के लिए उत्तरदायी है, जहां उनके आपसी संबंध बहुत अहमियत रखता है। जैसे भारत और पाक फरवरी 2010 में एक नए बंधन में बंधे मीडिया पूरी तरह सेनकारात्मक हो गई। दोनों देशों के विदेश मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारियों की हुई 25 फरवरी की बैठक से थोड़ी उम्मीदे थी। थोड़ी पूरी भी हुई। इसने इस मुद्दे को उठाया कि क्या दोनों देशों की मीडिया अपने देश की जनता से कम अपेक्षा के अत्याचार के लिए अभियुक्त माना। भारत और पाक के संबंध और मीडिया का एक बड़ा ही रोचक घटना घटी भारत-पाक के अखबार के पाठकों के लिए 2010 नए साल की सुबह भारत के द टाइम्स ऑफइंडिया समूह और पाक के जंग समूह ने अमन की आशा नामक एक पहल की। ये दोनों ही अपने-अपने देश के बड़े मीडिया घराने हैं जिनका हित अखबार ,टीवी और रेडियों से जुड़ा हुआ है। यह पहल आगे दोनों देशों के रिश्तों को क्या रुप देंगे यह देखने वाली बात होगी। लेकिन इस लेखन में जनता के मन में संदेह है। कोई भी यह विश्वास करने को तैयार नहीं है कि इस पहल का सच सही में शांति लाने की प्रबल इच्छा से जुड़ा है या फिर यह भी व्यवसायिक लाभ के लिए अवसर तलाशने की एक नई चाल हैं।

---

६ अध्ययन के स्रोत यहां हैं-: http://www.thehoot.org/web/home/searchdetail.php?sid=3360&bg=1 and http://www.thehoot.org/web/home/searchdetail.php?sid=3367&bg=1

७ अक्टूबर २००८ में मेल टुडे के कई रिपोर्टों पर सवाल उठाए गए। ये खबरें पढ़ी जा सकती है इसके न्यूज आर्काइव में जा के - www.mailtoday.in

८ देखें अंजली देशपांडेय और एस के पांडेय, थ्री डे ऑफ मुंबई टेरर रिपोर्टिंग, - http://www.thehoot.org/web/home/searchdetail.php?sid=3490&bg=1 जो पूरे अध्ययन का एक हिस्सा है। जिसे डीयूजे के ऑफिस से अनुरोध कर मंगाया गया ।

९ गीता सीशू, २६/११ मिथ मेकिंग : किस उद्देश्य ये? मौजूद है-http://www.thehoot.org/web/home/searchdetail.php?sid=4219&bg=1

१० जॉन ब्रिसको, वार आर पीस ऑन इंडूस, जानकारी लें- http://thesouthasianidea.wordpress.com/2010/04/03/war-or-peace-on-the-indus/.

नेपाल

एक नए लोकतंत्र की रक्षा

नेपाल में निजी स्वामित्व वाली मीडिया ने 1990 में जनआंदोलन के माध्यम से लोकतंत्र की स्थापना की, जहां दशकों से राणा वंश द्वारा पोषित पंचायत प्रणाली के तहत निरंकुश शासन चल रहा था. बहुदलीय लोकतंत्र के साथ यह प्रयोग जल्द ही नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) 1996 में किए गए विद्रोह के बाद खत्म हो गया, जिसे लोक युद्ध कहा गया।

इस विद्रोह की घटना के दौरान, भौगोलिक रूप से फैले दूरदराज के पहाड़ी क्षेत्रों, खराब अवसंरचना, व्यापक निरक्षरता और घोर गरीबी के बीच नेपाली मीडिया को स्वतंत्रता की मशाल जलाए रखने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ा।

फेडरेशन ऑफ नेपाली जर्नलिस्ट (एफएनजे) के आंकड़ों के अनुसार, उनके काम का सीधा परिणाम यह हुआ कि जुलाई, 2001 से 31 मीडिया कर्मियों की हत्या कर दी गई। चिंताजनक बात यह है कि अधिकांश मीडिया कर्मचारी 2005 के शांति समझौते के बाद मारे गए, जो संघर्ष की चरम ऊंचाई थी। 2006 में लोकतंत्र की वापसी के बाद राजनीतिक अस्थिरता ने भी मीडिया के लिए राह आसान नहीं किया, जो पहले ही एक दशक से आतंकवाद का दंश झेल रहा था। लोकतंत्र के लिए चल रहे संक्रमण को बहुत ही सफाई से दूर किया गया. पूर्व माओवादी लड़ाकों ने राष्ट्रीय सुरक्षा तंत्र को एकीकृत किया और एक नए संविधान को लिखने का महत्वपूर्ण काम करने में लगे। निर्णायक राजनीतिक नेतृत्व के अभाव में भी इसमें प्रचलित सामाजिक मान्याताओं, राजनीति और आर्थिक अनिश्चितता को जोड़ा गया। हाल में मीडिया घरानों के मालिकों की हुई हत्याओं ने अराजकता वाले राज्य के रूप में इसे प्रतिविंवित किया, खास कर दक्षिणी तराई क्षेत्र को 22 जुलाई 2010 को तुलसीपुर एफएम रेडियो के चेयरमैन देवी प्रसाद धितल की कुछ अज्ञात हत्यारों ने गोली मार दी। हत्या किए गए धितल तीसरे मीडिया घरानों के मालिकों में से एक है, जिनकी पिछले छह महीनों में हत्या की गई है। फरवरी के शुरुआत में नेपाली टेलीविजन चैनल 1 के चेयरमैन और सैटेलाइट स्पेस टाइम नेटवर्क के जमीम शाह को नकाबपोशों ने काठमांडू के व्यस्त सड़क पर मार गिराया था. अभी एक महीना भी नहीं बीता था कि, टुडे ग्रुप के चेयरमैन, जो कि जनकपुर टुडे दैनिक का प्रकाशन करते है तथा इसी नाम से एक रेडियो स्टेशन भी चलाते हैं, उनको भी कुछ अज्ञात मोटरसाइकिल सवारों ने उनके धनुषा जिला स्थित जनकपुर स्थित आवास के सामने गोली मार दी।

नेपाल में पत्रकार सरकारी क्रोध का कोपभाजन बन रहे हैं। हाल के समय में तराई में वे माओवादी विद्रोहियों और सशस्त्र समूहों के क्रोध का सामना कर रहे हैं। एफएनजे के उपाध्यक्ष प्युथन और एफएम ब्राडकास्टर मनदवा रेडियो के रिपोर्टर केशव बोहरा का जुन 2010 में किया गया अपहरण यह उदाहरण है कि पत्रकार यहां रोजाना जोखिम का सामना कर रहे है। जिला पत्रकार विशेष तौर से और जोखिम में रहते हैं, जैसे कि दैनिक राजधानी के रिपोर्टर टिका बिस्ता के मामले में हुआ।

दिसंबर 2009 में, स्थानीय स्तर पर प्रकाशित जनतिधारा में माओवादियों की आलोचनात्मक आलेख के प्रकाशन के बाद बिस्ता को

पत्रकारों को साल दप साल निरंकुश राज्य के सिद्धांत वाले राज्यों में हर रोज कठिन समय का सामना करना पड़ता है।

रेजर ब्लेड से वार किया गया और पहाड़ी से फेंक दिया गया और नेपाल के सुदूर पश्चिम में रुकुम स्थित उसके घर के नजदीक उसे मरा छोड़ दिया गया। एक साल के भीतर ही एक युवा पत्रकार उमा सिंह की तराई के जनकपुर शहर में क्रूरता से हत्या कर दी गई। हालांकि इस मामले में कुछ गिरफ्तारियां भी हुईं, उसकी हत्या के पीछे उन लोगों के हाथ होने की बात कही जाती है।

माओवाद का साम्राज्यः तनाव में मीडिया

1996 के बाद के वर्षों से नेपाल की राजनीति पर माओवादी उग्रवाद हावी है. यह विद्रोह पुष्प कमल दहल उर्फ प्रचंड के नेतृत्व में गरीब, अशिक्षित और उपेक्षित खास कर नेपाल के सुदूर ग्रामीण व पहाड़ी क्षेत्रों में संचालित किया गया।

काठमांडु के राजशाही परिवार का महल नारायणहिती प्लेस में जुन 2001 में नरेश बीरेंद्र उनकी पत्नी ऐश्वर्य और आठ अन्य शाही सदस्यों की हत्या की गई, वह दृश्य बड़ा भयानक था। नरेश का पुत्र दीपेंद्र राजसिंहासन के लिए पहले कतार था, उस पर आरोप है कि नरसंहार के पूर्व वह खुद पर ही बंदूक तान दिया। युवराज तीन दिन के बाद मर गया और अपने चाचा ज्ञानेंद्र को गद्दी संभालने का रास्ता छोड़ गया। इन हत्याओं में कई षड्यंत्रों थे, अधिकारियों ने इन हत्याओं में दीपेंद्र की संलिप्तता के कई सबूत पाए। महल में नरसंहार के बाद सरकार और

मीडिया के कर्मी अरुण सिघानिया के हत्या के विरोध में काडमांडू में चल रहे प्रदर्शन में पत्रकारों को पुलिस की दबंगई का सामना करना पड़ा।

माओवादी विद्रोहियों के बीच संक्षिप्त युद्ध विराम हुआ। यह युद्ध विराम नवंबर 2001 में धवस्त हो गया, जब सरकार ने देश में आपातकाल की घोषणा कर दी। नागरिक स्वतंत्रता पर तीन साल से अधिक के दबाव के बाद क्या हुआ, जब पत्रकारों और मीडिया कर्मचारियों को मारा गया या उन्हें बंधक बना लिया गया।

4 अक्टूबर, 2002 को नरेश ज्ञानेंद्र ने लोकतांत्रिक सरकार को बर्खास्त कर दिया, बाद में प्रधानमंत्री शेर बहादूर देउबा और उनकी कैबीनेट को भी बर्खास्त कर दिया, जबकि सुरक्षा पर नियंत्रण था और माओवादी उग्रवादियों से सौदे करने के लिए स्वतंत्र थे। यहां तक कि 2003 के मध्य तक युद्धविराम सही था, प्रेस और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता गंभीर दबाव में थी और नेपाल में मानवाधिकारों में सतत गिरावट था।

मीडिया राजतंत्र और माओवादियों के बीच निचोड़ा गया, सेना व विद्रोहियों द्वारा किए गए ज्यादतियों का शिकार भी हुआ. कठोर आतंकवाद निरोधक कानून के तहत अपहरण, अत्याचार और हत्याएं आम बात थी। पत्रकारों की स्थिति और प्रेस की स्थिति में 29 अगस्त, 2002 को आपातकाल हटा लेने के बाद भी कोई सुधार नहीं हुआ। 27 अग्सत 2003 को एक और युद्ध विराम धवस्त हो गया, पत्रकार अपनी जगह से हटाये गये और उन्हें प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष तौर पर पार्टियों की ओर से धमकियां मिलने लगी।

2004 में, संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार के कार्य समूह ने अनैच्छिक गुमशुदगी पर 130 मामलों पर प्रथम द्रष्टया एक दस्तावेज सरकार को सौंपा। उस वर्ष सभी देशों में दर्ज मामलों में यह सबसे अधिक था। कानून व्यवस्था की बिगड़ती यह अवधि और दमनकारी घटनाओं के लिए यह नेपाल का इतिहास बन गया।

राजशाही का तख्तापलटः स्वतंत्र मीडिया

इस आधार पर निर्वाचित सरकार ने विद्रोह को संभालने के लिए छोटे स्तर पर प्रयास किया। ज्ञानेंद्र ने सभी शक्तियों पर सीज कर दिया, राजनेताओं को हिरासत में ले लिया और 1 फरवरी 2005 को प्रेस की स्वतंत्रता निलंबित कर दिया। सेना न्यूज रुम में घुस गई और निजी स्वामित्व वाले टीवी और रेडियो स्टेशनों में तत्काल प्रभाव से काम रोकने का आदेश दिया। तीन दिनों के लिए फोन और इंटरनेट के कनेक्शन और मोबाइल फोन के कनेक्शन सप्ताह भर के लिए काट दिए गए। शाही परिवार द्वारा सत्ता हथियाने के दो दिन बाद एक नोटिस जारी कर चेतावनी दी गई कि ''राष्ट्र और राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रख कर महाराज की सरकार ने छह महीने के लिए किसी बी प्रकार के साक्षात्कार, आलेख, समाचार, सूचना, विचार या व्यक्तिगत विचार, जो शाही उद्घोषणा के खिलाफ या प्रत्यक्ष– अप्रत्यक्ष रूप से विनाश व आतंकवाद का समर्थन करता है, उस पर प्रतिबंध लगाया गया

है।'' ठीक इसके बाद संपादकीय कार्यालय में सैन्य खुफिया विभाग के सशस्त्र व्यक्ति को बैठा दिया गया। हालांकि नेपाली मीडिया ने प्रभावशाली ढंग से व्यंग्यात्मक लहजे में प्रतिरोध शुरु किया। नेपाल का सर्वाधिक प्रसार वाले अंग्रेजी दैनिक काठमांडू पोस्ट ने व्यंग्यात्मक समाज में मौजा शीर्षक से संपादकीय का प्रकाशन शुरू किया कि कैसे नेपाल जैसे गरीब देश में बगैर किसी छिद्र के प्रतिष्ठा नाक का सवाल बन गया है। नेपाली टाइम्स और हिमाल खबर पत्रिका ने सेंसरशिप के दौरान अखबार कई स्थानों को रिक्त छोड़ दिया था। एक दूसरी तकनीक भी खामोशी के साथ अपनाया गया, देशांतर और विमर्श जैसे नेपाली साप्ताहिकों ने संपादकीय का स्थान रिक्त छोड़ दिया था। इस कानून का पालन नेतृत्व मुख्य जिला अधिकारी, स्थानीय निकायों के प्रमुखों द्वारा किया गया और काठमांडू के पांच संपादकों के खिलाफ सम्मन जारी किया गया तथा उनसे पूछताछ की। उन्हें तभी छोड़ा गया जब उन्होंने उस दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए वे सरकार विरोधी खबरों का प्रकाशन नहीं करेंगे। तब संपादकीय का स्थान रिक्त छोड़ने पर रोक लगा दी गई और दूसरी ओर विद्रोहियों के समर्थक नेपाली साप्ताहिक संघु के संपादक के नाम को सामान्य तौर पर प्रकाशक व संपादक के तौर पर प्रकाशन वाले स्थान से हटा दिया गया। उन्होंने कहा कि अब मैं अपने ही प्रकाशन का संपादक नहीं रहा हूं। अगर सुरक्षा कर्मी जो हमारी कॉपी का सेंसर करेंगे तो उनका नाम प्रकट होगा, मैं उसे एक सच्चे संपादक की तरह प्रस्तुत करुंगा।

सरकारी दिशानिर्देशों को मानने और विज्ञापन खर्च नियंत्रित करने का दबाव था। 2005 के सितंबर मध्य में एकतरफा विज्ञापन वितरण नीति शुरु की गई, जिसे महत्वपूर्ण मीडिया संस्थानों ने सरकार द्वारा पेड एडवरटीजमेंट को नकार दिया। वास्तव में, सरकारी विज्ञापन के लिए सुरक्षा कर्मियों में नैतिक रूप से सकारात्मक भागीदारी सुनिश्चित करना था। इसमें विफल रहने वालों के राजस्व के मुख्य स्रोत में कटौती होनी थी, वह भी खास कर छोटे स्तर के साप्ताहिक व पाक्षिक पत्र पत्रिकाओं के लिए। ज्यादातर निजी क्षेत्र के विज्ञापन दैनिक अखबारों तक ही सीमित है, वैसे भी सरकारदो अरब रुपये के विज्ञापन का 30 से 40 प्रतिशत नियंत्रित कर दिया था। बहुत सारे छोटे अखबरा व रेडियो स्टेशन बंद होने के कगार पर आ गये।

प्रेस की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष

पेशेवर वकीलों के संगठन, शिक्षक और इंजीनियरों ने एक गठबंधन बना कर लोकतंत्र के लिए प्रदर्शन किया। इस आंदोलन में पत्रकार अपने फेडरेशन ऑफ नेपाली जर्नलिस्ट संगठन के साथ आगे-आगे रहे। द प्रेस चौथरी, नेपाल प्रेस युनियन, क्रांतिकारी पत्रकार संघ और दूसरे पंजीकृत संगठन भी सक्रिय रहे, इनमें से अधिकांश गिरफ्तारी के भय से भूमिगत हो गये। फेडरेशन ऑफ जर्नलिस्ट के कोषाध्यक्ष शिवा गाउंले ने कहा कि उस समय सबसे जरुरी मुखर होना था। शिवा

अक्टूबर २००६ में एक न्यूज फोटोग्राफर काडमांडू में हो रहे विरोध प्रदर्शन में एक घायल महिला की मदद करता हुआ।

जीवन बचाने का अभियान

विद्रोह के दौरान, खास कर 2005 में राजशाही का तख्ता पलट ने के बाद नेपाल में पत्रकारों को विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा था पत्रकार माओवादी व सरकार दोनों के सेंसरशिप, प्रतिबंध, आपराधिक जुल्म अपहरण और विस्थापन के नियमित रूप से शिकार हो रहे थे, जो कभी-कभी घातक भी होता था। एफएनजे ने माओवादी सेंट्रल कमेटी के नेताओं के साथ बातचीत शुरू की कि व्यक्तिगत तौर पर पत्रकारों पर जुल्म न हो और स्वतंत्र मीडिया की जरुरत पर जोर दिया। एफएनजे सेंट्रल कमेटी के सदस्य पूर्ण बसंत ने माओवादियों से साप्ताहिक आंखा के पत्रकार सोम शर्मा की रिहाई के लिए बातचीत की.माओवादियों की खिलाफ आलेख लिखने की वजह से 13 मई, 2005 को उनको उठा लिया गया था। एक पत्र उनके परिवार वालों के नाम भेजा गया, जिसमें कहा गया कि शर्मा माओवादियों के कब्जे में हैं और उनकी हत्या भी की जा सकती है।

बाद में विभिन्न नेताओं की पहल और ई-मेल और फोन पर बातचीत के बाद शर्मा को एफएनजे की टीम से मिलाया गया। और उन्हें 55 दिनों के बाद रिहा कर दिया गया। यह पहला मौका था जब पत्रकारों को संघर्ष से बचाया गया। बसंत ने कहा कि इस उद्धार अभियान के बाद देश के पत्रकारों में विश्वास जगा। एफएनजे की विश्वसनीयता बढ़ी। यह तब हुआ जब देकेंद्र थापा की अपहरण कर हत्या कर दी गई थी। इसके कुछ साल बाद ही ऐसा हुआ 11 अगस्त, 2004 को माओवादी विद्रोहियों द्वारा नेपाल सरकार द्वारा संचालित रेडियो नेपाल के पत्रकार देवेंद्र राज थापा की अपहरण कर हत्या कर दी गई थी। छह सप्ताह पहले उन्हें पश्चिमी पहाड़ी जिले से उठाया गया था एफएनजे की एक प्रतिनिधि मंडल थापा की ओर से माओवादियों से उनकी रिहाई की अपील भी की थी विद्रोहियों ने थापा के गांव एक सूचना भेजी, जिसमें कहा गया कि जासूसी के आरोप में उस पत्रकार की हत्या कर दी गयी है।

स्थानीय माओवादी कमांडर ने घोषणा की कि आसपास के जिलों के 10 पत्रकारों की और हत्या की जाएगी। पहली बार माओवादियों के प्रवक्ता कृष्णा बहादूर महरा ने एफएनजे को पत्र लिखा और कहा कि हत्याएं उनकी नीति का उल्लंघन है और उन्होंने इन हत्याओं की जांच करने का वादा किया। हालांकि माओवादियों ने ज्ञानेंद्र खदका, जो कि एक शिक्षक होने के साथ-साथ राष्ट्रीय समाचार समिति (राष्ट्रीय समाचार एजेंसी) से जुड़े थे, उनकी सितंबर, 2003 में हत्या कर अपनी माओवादी की नीतियों का उल्लंघन किया। लेकिन उसके लिए कोई क्षमायाचना का भाव नहीं था।

समूहों को ऐसी बेरुखी ने एफ एन जे को और उसके पत्रकारों को झटका दिया पर एफ एन जे भी कहां हार मात्रे वाला था। उसने माओवादियों के विभिन्न समुहों के पत्रकारों से बातचीत कर पत्रकारों के कामकाज से उन्हें परिचित कराया और यह समझाया कि पत्रकार उनके मित्र हैं शत्रु नहीं। पर इसका कोई असर माओवादियों पर नहीं हुआ।

2002-04 में कोषाध्यक्ष तथा 2005-08 में उपाध्यक्ष रहे हैं। मीडिया उद्योग लोकतांत्रिक ताकतों को प्रोफेशन्ल्स एलायंस फार पीस एंड डेमोक्रेसी के बैनर के तहत एक जुट करने के लिए अगुआ का काम कर रहा था। एफएनजे के तहत इतने प्रभावकारी पत्रकारों के निकाय थे, जो राजभक्ती को कमजोर करने के लिए किए गए प्रयासों को दोहराया गया। नेशनल फेडरेशन आफ जर्नलिस्ट को स्पष्ट तौर से सरकार के धन के समर्थन से राजशाही के प्रति सहानुभूति के तौर पर स्थापित किया गया। हालांकि इसने पत्रकार बिरादरी में विभाजन किया, कई पत्रकार सरकारी मीडिया घरानों (नेशनल न्यूज एजेंसी और नेपाल रेडियो) से ताल्लुक रखते हैं, यदि वे इस संगठन से जुड़ने से इनकार करते तो उनकी नौकरी भी जा सकती थी। एफएनजे के महासचिव पोसन केसी ने कहा कि यह विडंबना ही है कि लोकतंत्र का मार्ग प्रशस्त करने के लिए योगदान देने वाले पत्रकारों को अपनी आजादी का संघर्ष करना पड़ रहा है लेकिन अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होगी इसकी कोई गारंटी नहीं है।

29 अप्रैल 2005 को आपात काल के खात्मे के बाद भी प्रेस की स्वतंत्रता के लिए कुछ खास नहीं किया गया। पूरे देश के पत्रकार खास कर जिलों में रहने वाले पत्रकारों की हत्याएं हो रही थी, उन पर माओवादियों और सरकार दोनों की ओर से हमले, अत्याचार हो रहे थे. इस स्थिति से स्थानीय मीडिया को काफी जुझना पड़ा, नेपाल की शाही सेना और माओवादियों दोनों से। दबाव व धमकियों के द्वारा समाचार के कंटेंट प्रभावित होना सामान्य था। इस कारण मीडिया को मिलने वाली सुविधाएं बंद कर दी गई।

सख्त कानून के खिलाफ पैरवी

9 अक्टूबर 2005 को सख्त मीडिया अध्यादेश को जारी किया गया और अप्रैल 2006 को नवीनीकरण किया गया, यह नेपाली नागरिकों और मीडिया की स्वतंत्रता और अधिकारों के लिए सरकार द्वारा किए गए प्रतिबंध को कानूनी जामा पहनाता है। मीडिया से संबंधित छह कानूनों रेडियो एक्ट 1958, नेशनल ब्राडकास्टिंग एक्ट 1992, द प्रेस काउंसिल एक्ट 1992, द प्रेस एंड पब्लिकेशन एक्ट 1992, द नेशनल न्यूज एजेंसी एक्ट, 1962, लीबल एंड डीफामेशन एक्ट 1959 में प्रभावी तरीके से इस अध्यादेश के माध्यम से संसोधन किया गया।

एफएनजे ने इस अध्यादेश के खिलाफ आवाज उठाया, इसके बाद इस कानून का इस्तेमाल रेडियो स्टेशनों पर छापा मारने रेडियो ट्रांसमीशन उपकरणों को जब्त करने, समाचार प्रसारण में निषेध, और पत्रकारों को परेशान करने में किया जाने लगा। एफएनजे ने इस अध्यादेश को संविधान में उल्लेखित 1990 के अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की गांरटी के आधार पर कानूनी चुनौती दी। दो बार ठंडे बस्ते में डालने के बाद भी अंत में सुप्रीम कोर्ट ने इसकी वैधता को सही ठहराया। हालांकि राजा ने मई 2006 में लोकतांत्रिक आंदोलन को हवा दी और संसद ने उस बहाल कानून को रद कर दिया। 2001 में आतंकवादी व विनाशकारी गतिविधि (निषेध व नियंत्रण) कानून जारी हुआ और 2005 तक चला और फिर 2006 तक इसे बढ़ाया गया, स्वतंत्र समाचार के प्रसार के लिए बहुत सारे अधिनियमों को आपराधिक करार दिए गए। अध्यादेश में बगैर सुनवाई

तमाम चुनौतियों और भय का सामना करके भी नेपाल पत्रकार जितनी जल्दी हो सके ब्रेकिंग न्यूज देते हैं।

के हिरासत में रखने का प्रवधान था, इसका इस्तेमाल मीडिया कर्मियों को परेशान करने के लिए किया जाता था। जन सुरक्षा कानून 1989 का उपयोग भी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर नियमित रूप से अंकुश लगाने के लिए किया जाता था। अप्रैल 2006 के प्रसिद्ध आंदोलन जिसे जन आंदोलन–2 भी कहा जाता है, उसके बाद इस कानून का उपयोग तिब्बती प्रदर्शनकारियों के खिलाफ किया गया, जो बीजिंग में होने वाले ओलंपिक 2008 का विरोध कर रहे थे।

सक्रिय न्यायपालिका

आपातकाल के दौरान नेपाल सुप्रीम कोर्ट ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया और लोकतंत्र की स्थापना व कानून का राज बहाल किया। राजा द्वारा असंख्य अवैध गिरफ्तारियों को सरकार ने बगैर न्यायिक प्रक्रिया के यातना दिए जाने वाले पत्रकारों को सरकार ने हिरासत से निकाला और कोर्ट तक ले आई। गौरतलब हो कि न्यायपालिका ने राजनीतिक क्षीतिज पर पत्रकारों के अधिकारों के रक्षा के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। वकील भामार्जुन अचार्य और टिकाराम भट्टराई के अनुसार एफएनजे के अध्यक्ष विष्णु निस्टूरी और तारानाथ दहल जैसे असंख्य पत्रकार स्वतंत्र न्यायपालिका के अभाव में मारे गए या गायब हो गये। सुप्रीम कोर्ट और देश के 16 अपीलीय अदालतों ने 100 से अधिक बंदी प्रत्यक्षीकरण के मामले में पत्रकारों के पक्ष में फैसला दिया। नेपाल में गुमशुदगी का दर काफी अधिक है। संयुक्त राष्ट्र के कार्य समूह ने अपने अध्ययन में पाया कि 2003–04 में गुमशुदगी के मामले विश्व भर में सबसे ज्यादा नेपाल में है। देश की न्यायपालिका ने इस मामले में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। वकील किशोर उपरेती ने ध्यान दिया कि 2007 में नेपाली सुप्रीम कोर्ट ने न्याय के लिए रुढ़ीवादी और निष्क्रिय दृष्टिकोण की लंबी परंपरा को देश की राजनीतिक लाभ के लिए नगरनिगम और अंतरराष्ट्रीय कानून के आलोक में तोड़ दिया[१]। न्यायिक हस्तक्षेप महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है। आपातकाल के दौरान तथा राजा द्वारा सत्ता का अधिग्रहण करने के दौरान कोर्ट ने एफएम रेडियो और मीडिया घरानों, सूचना के अधिकार और बोलने की स्वतंत्रता के लिए कानूनी हस्तक्षेप किया। 2001 में सुप्रीम कोर्ट ने नेपाल में प्रेस की स्वंतत्रता के साथ रेडियो को भी जोड़ा। जून 2005 में रेडियो संचार सामग्री के वितरण कार्नर को बंद होने से रोका गया। उस वर्ष अगस्त में मीडिया का दमन चरम पर था, सुप्रीम कोर्ट ने सरकार द्वारा असंवैधानिक ढंग से एफएम

---

१ अपरेटी, के २००८ , “ अगेंस्ट इनफोरस डिसएपियरेंसः द पॉलिटिकल डिटेनीज’ नेपाल सुप्रिम कोर्ट के पहले। चाइनीज जर्नल ऑफ इंटरनेशनल लॉ। वाल्यूम ७ नं-२ पीपी-४२६-४५७

रेडियो द्वारा समाचार के प्रसारण, रेडियो स्टेशन से ट्रांसमीटर और अन्य उपकरणों के जब्त किए जाने के आदेश को रद कर दिया।

रेडियो क्रांति

नेपाल समाचार के कंटेंट और पहुंच के मामले में दक्षिण एशिया में नेतृत्व करता रहा है। तब भी सरकार और बड़े कारपोरेशनों के द्वारा लगातार उसके एयरवेव को नियंत्रित करने का प्रयास किया जाता रहा है और निजी व सामुहिक स्वामित्व वाले एक स्टेशन समाचार, करेंट अफेयर्स और मनोरंजक सामग्री से भरपुर है। वहां 186 रेडियो स्टेशन वर्तमान में चल रहे हैं, जबकि 323 को लाइसेंस दिए गए हैं[२]।

नेपाल में रेडियो का इतिहास जानने के लिए 1950 में जाना होगा, जब नेपाली कांग्रेस पार्टी निरकुश सामंत राणा के खिलाफ संघर्ष कर रही थी। स्वतंत्रता सेनानियों ने प्रजातंत्र नेपाली रेडियो पूर्वी तराई के विराटनगर में शुरू किया था। रेडियो का इस्तेमाल पार्टी के कार्यक्रमो और लोकतांत्रिक नीतियों को लोगों तक पहुंचाने के लिए किया जाता था। जब राणा का सत्ता पर एकाधिकार खत्म हो गया था, नई सरकार आ गयी थी तब इसे काठमांडु में स्थानांतरित किया गया और इसका पुन: नामकरण नेपाल रेडियो हुआ और बाद में रेडियो नेपाल। धीरे-धीरे लेकिन एक दिन यह सरकार की पहचान बन गई और इसके समाचार के स्रोतों की विश्वसनीयता कम हो गई।

1997 तक ऐसा नहीं था कुछ नेपाली मीडिया कार्यकर्ता औप पत्रकारों ने मिल कर देश का पहला सामुहिक रेडियो स्टेशन काठमांडु के एक कमरे में स्टूडियों बना कर शुरू कर दिया। रेडियो सागरमाथा रेडियो क्रांति का अग्रदूत था, व्यवहार में लाने के लिए इसे जन सेवा प्रसारण के रूप में वर्णित किया जा सकता है एक बार तो एफएम रेडियो सरकार के नियंत्रण से बाहर ही हो गया, लगभग 50 एफएम रेडियो कुछ सालों में ही लांच हो गये। संगीत उद्योग को बढ़ावा देने के अलावा एफएम रेडियो तेजी से प्रमुख समाचार के स्रोत बन गये। 2001 में सुप्रीम कोर्ट का दिया गया निर्णय मील का पत्थर साबित हुआ कि एफएम रेडियो को समाचार प्रसारण की अनुमति मिल गई।

2005 के तख्ता पटल के बाद, सरकार ने छह महीने तक रेडियो से समाचार या समाचार से संबधित कार्यक्रमों के प्रसारण पर रोक लगा दी। अब एफएम रेडियो सूचना और कार्यक्रमों की सूचना भर देने लगे। रेडियो एक प्रकार से अखबार भी पढ़वा देते थे, उनका कार्यक्म क्या कहते हैं अखबार-के माध्यम से अखबार में छपी खबरें लोगों तक पहुंच जाती थी। एफएम न्यूज को बंद करने नेपाली स्वतंत्र समाचार से बिल्कुल कट गये। देश में लगभग 70 फीसदी अशिक्षा, और खराब सड़कें तथा पहाड़ी इलाकों तक हवाई मार्ग नहीं होने से ये दिक्कतें थी। बीबीसी की नेपाली सेवा ही समाचार का एक स्रोत रह गया था, लोग जानकारी के लिए बेताब थे और शार्ट वेब के रेडियो खरीदने के लिए बेताब थे।

तात्कालिक काठमांडु पोस्ट के संपादक प्रतीक प्रधान कहते हैं कि पत्रकारों का एक समूह नेपाल की सीमा से सटे भारतीय शहरों में नेटवर्क विकसित किया, जो सरकार द्वारा प्रतिबंधित किए जाने के बाद यहां से रेडियो का प्रसारण व अखबारों का प्रकाशन शुरू किया। हालांकि प्रतिरोध के इस तरीके से कोई खास बदलाव नहीं आया।

स्वतंत्र समाचार के स्रोतो से वंचित होने के अलावा कई रेडियो स्टेशन विभिन्न लोकप्रिय कार्यक्रमों के प्रस्तोताओं द्वारा दिए जाने वाले विज्ञापन रोकने से बंद हो गये तथा कुछ ऐसे स्टेशन भी थे जिन्हें लंबे समय तक प्रसारण की अनुमति नहीं मिली थी। लगभग एक हजार पत्रकार इन देश भर में फैले एफएम रेडियो स्टेशनों से जुड़े थे, बेरोजगार हो गये. अभी तक शाही तख्ता पलट का संकट और आपातकाल था ही कि एक साथ पत्रकारों औपर मीडिया संगठनों ने सेंसरशिप और बंद रेडियो स्टेशनों को खोलने के लिए संघर्ष शुरू कर दिया। एसोसिएशन ऑफ कम्युनिटी रेडियो ब्राडकास्टर्स नेपाल, ब्राडकास्टर्स एसोसिएशन ऑफ नेपाल, काठमांडु वैली एफएम ब्राडकास्टर्स फोरम और सेव इंडीपेंडेंट रेडियो मुवमेंट, रेडियो जर्नलिस्ट ने विरोध का एक मुहिम शुरू किया. रेडियो क्रांति लोकतंत्र के आंदोलन को आगे बढ़ाने में सबसे आगे था. लोगों की नजर में रेडियो एक अच्छा तरीका था।

रेडियो लगातार अपनी पहुंच को देश में बढ़ाता रहा है। नवीनतम सर्वेक्षण के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में टीवी की तुलना रेडियो का उपयोग अधिक होता है और इसका अनुपात 2:1 है[३]। आज रेडियो सेक्टर काफी आगे निकलता हुआ महसूस हो रहा है। एसी बात नहीं है कि रेडियो स्टेशन्स बढ़ रहे हैं बल्कि रेडियो के ब्रॉड कास्ट टुरिस ने के साथ उच्च गुणवश्रा के सिगनल दिये जाने लगे हैं और कवरेज भी पहले की तुलना में काफी बेहतर हो चुका है। 2008 में रेडियो ब्रॉड कास्टरिस के बारे में आचार सहिंता और धपएशनल गाइड लाइन पर आधारित हैंड बुक तैयार कि गई जिससे इस क्षेत्र में काफी सुविधाएं उपलब्ध हो गईं[४]।

अतंरराष्ट्रीय एकात्मता

अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों ने शांति प्रक्रिया में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। यहां तक कि संयुक्त राष्ट्र ने पूर्व विद्रोहियों के कैटोंमेंट् की निगरानी भी की। एक तरफ इस आधिकारिक कार्यों के साथ ही अंतराष्ट्रीय एकात्मता ने मानवाधिकार और प्रेस की स्वतंत्रता के उल्लंघन के मामले को हाईलाइट किया।

राजशाही की तख्ता पलट के बाद, अंतरराष्ट्रीय प्रेस फ्रीडम मिशन ने पांच बार नेपाल का दौरा कर नेपाली पत्रकारों के साथ एकता दर्शाया और अथारिटी पर अतिरिक्त दबाव बनाया। इसके अतिरिक्त, आईएफजे के हस्तक्षेप से दक्षिण एशिया मीडिया एकता नेटवर्क के तहत क्षेत्रीय नेटवर्क स्थापित किया गया और दिखाया गया कि सीमा पार के पत्रकारों की एकता देश के सत्ताधारियों पर दबाव बनाने में शक्तिशाली स्रोत बन सकता है। संघर्ष के दौरान पत्रकार विस्थापित हो गये या अपनी लेखनी की वजह से वे भारत में अंतरराष्ट्रीय और क्षेत्रीय नेटवर्क के

२ रेडियो स्टेशन की सुचना के लिए देखें- http://www.nepalradio.org/p2_information.htm16 flracj 2010

३ ब्राडकॉस्टींग आडियो सर्वे देखें २००६-२००७-http://www.nepalradio.org/p3_audience_reports.htm

४ देखें रेडियो ब्राडकॉस्टींग कोड आफ कंडक्ट और आपरेशनल दिशानिर्देश २००८ - http://www.nepalradio.org/p2_coc.htm १६ सितंबर २०१०।

बड़े भाई का बड़ा हथियार

इंडियन डायरेक्टोरेट ऑफ रेवेन्यू इंटेलीजेंस (डीआरआई) ने 27 मई,2010 को एक जहाज से 1000 टन कनाडा और दक्षिण कोरिया से आयातित न्यूज प्रिंट जब्त किया 39 कांटेनर में ले जाये जा रहे न्यूज प्रिंट की जांच जरुरी थी।

ट्रेड एंड ट्रांस्सिट एग्रीमेंट के अनुसार भारतीय क्षेत्र से नेपाल आयातित सामानों को ले जा सकता है। अगर किसी प्रकार के दुरुपयोग का कोई सबूत न मिले तो सिल्ड कांटेनर नेपाल सीधे अपने क्षेत्र में ले जा सकता है। इसके बावजूद नेपाल में भारतीय दूतावास और भारतीय विदेश मंत्रालय ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। इससे यह बात साफ है कि कांतिपुर समूह ने कभी भारतीय हितों के साथ छेड़छाड़ नहीं की यह माना गया कि भारतीय दूतावास समाचार पत्रों में नेपाली वक्ताओं द्वारा असम-मेघालय और कोसी नदी के विषय में प्रकाशित समाचारों पर प्रतिक्रया व्यक्त कर सकता था। कांतिपुर का संपादकीय माधव कुमार नेपाल के खिलाफ भी था। जिसमें भारत द्वारा उन्हें समर्थन दिए जाने की बात थी। कहानी यही खत्म हो सकती थी लेकिन 27 अगस्त को छोड़ कर, जब भारतीय दूतावास ने काठमांडू में एक प्रेस रिलीज जारी कर कहा था कि भारत-नेपाल द्वारा संयुक्त रूप से उत्पादित उत्पादों के खिलाफ प्रिंट और टेलीविजन मीडिया रिपोर्टिंग कर रहे हैं। भारतीय समर्थन वाले आईएफजे ने राजनीति फायदे के लिए टिप्पणी किया था कि भारतीय सरकार ने कांतिपुर समूह का आयात होना वाला न्यूज प्रिटं रोक दिया है।

साथ शरणार्थी बन गये। नेपाल की राजनीति में भारत ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और लाबिंग गतिविधियों ने भारत के नई दिल्ली स्थित सुरक्षा संस्थानों को निशाना बनाया। भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री आई के गुजराल, पूर्व सांसद व कालमनिस्ट कुलदीप नैयर, पाकिस्तान के मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष आसमा जहांगीर और पाकिस्तानी दैनिक डेली टाइम्स की संपादक नजमा सेठी ने लोकतंत्र की बहाली और प्रेस की स्वतंत्रा के समर्थन में लिखा तख्ता पलट के दौरान जेल में कैद होने वाले एफएनजे के महासचिव विष्णु निष्ठुरी ने कहा कि एफएनजे के लिए अंतरराष्ट्रीय नेटवर्किंग बहुत बड़ी ताकत है जिसका हमने शाही काल में जम कर इस्तेमाल किया. राजशाही के टेकओवर के सप्ताह भर बाद पहली बार अंतरराष्ट्रीय हस्तक्षेप दिखा, जिसका नेतृत्व आईएफजे मिशन के तात्कालीन अध्यक्ष क्रिस्टोफर वारेन ने किया। इंटरनेशन मीडिया सपोर्ट (आईएमएस) ने कोपेनहेगन में समर्थन भी दिया। ऐसे ही स्थिति कुछ महीनों तक बिगड़ती ही गई, जुलाई 2005 में 12 संगठनों[५] का एक गठबंधन फिर से दूसरे प्रेस फ्रीडम मिशन की शुरुआत की. ऐसी ही मिशन मार्च और सितंबर 2006, जनवरी और अप्रैल 2008 और फरवरी 2009 में भी चलाया गया। इस मिशन का उद्देश्य नेपाली मीडिया को मजबूती देने, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और मीडिया के अधिकारों को समर्थन देना था। जरुरत थी कि सभी संगठन एक आवाज में बोले और उद्देश्य की प्राप्ति के लिए रणनीति बनाये[६]। ऐसे अलग-थलग पड़े समय में पहली मुहिम अपने उद्देश्यों के जरिये देश के पत्रकारों की नैतिकता को बढ़ाने में कामयाब रही और उनकी लोकतंत्र बहाली की मांग और प्रेस की स्वतंत्रता दिखाने के करीब पहुंची। नेपाली आंदोलन का अंतरराष्ट्रीय करण निर्णायक साबित हुआ तब जब कि पश्चिमी देश राजा का समर्थन कर रहे थे और वे माओवादियों के खिलाफ उन्हें परकोटे की तरह समझ रहे थे।

पहले तीन मुहिमों ने प्रतिक्रिया स्वरूप गंभीर चेतावनी दी जनवरी 2008 में मुहिम ने पुनर्मूल्यांकन का प्रयास किया, और दीर्घावधि में मीडिया का विकास चाहता था। अप्रैल 2008 में मिशन ने नेपाली असेंबली चुनाव के दौरान मीडिया के अधिकारों की रक्षा और निगरानी की, फरवरी 2009 में उसने मीडिया के खिलाफ हिंसा के प्रति त्वरित कार्रवाई की, मिशन की मूल्यांकन रिपोर्ट ने उल्लेख किया कि अंतरराष्ट्रीय मीडिया मिशन तत्काल सरकार को मीडिया पर नियंत्रण के संबंध में तुरंत कुछ नहीं समझा सकी थी लेकिन उस समय उसने दबाव बनाने में प्रभावकारी काम किया, जिससे इस नियंत्रण का निवारण हो सका।[७]

सुरक्षाः न्याय के करीब

दशकों तक विद्रोह और मानवाधिकारों का दुरुपयोग का गवाह रहने के बाद- यातना और गुमशुदगी से न्यायिक हत्याओं तक, नेपाली शाही सेना और माओवादी लिबरेशन आर्मी दोनों ही मानवाधिकार के उल्लघंन के लिए दोषी हैं। बहुत सारे पत्रकार मारे गये, उस समय कई यातना व गुमशुदगी के शिकार हुए. यहां तक युद्ध की समाप्ती के बाद शांति बहाली समझौते पर हस्ताक्षर के बाद भी हिंसा तत्काल नहीं रुकी उल्लेखनीय है कि युद्ध संघर्ष के बाद जनवरी 2009 में उमा सिंह की हत्या हुई। बारा के रहने वाले टीवी पत्रकार वीरेंद्र शाह का शव नवंबर 2007 में मिला, अक्टूबर 2007 में माओवादी उन्हें भगा ले गये थे। वे सभी न्याय के लिए बैठे है।

संघर्ष के दौरान व उसके बाद मीडिया या पत्रकारों पर हमले की एक नई संस्कृति का चलन हो गया। सुरक्षा का अभाव मानवाधिकार संगठनों और प्रेस की स्वतंत्रता की वकालत करने वालों का एक महत्वपूर्ण एजेंडा है। एक स्थाई प्रकोष्ट होने के बाद भी, एफएनजे सरकार पर यह दबाव बनाने में कामयाब रहा कि संघर्ष के दौरान प्रभावितों के लिए एक फंड की व्यवस्था की जाए। दूसरा यह कि सरकार ने वादा किया कि एक

५ आर्टिकल- पत्रकारों की रक्षा करने वाली समिति, इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ जनर्लिस्ट, इंटरनेशनल मीडिया सहयोग, इंटरनेशनल प्रेस संस्थान, भारत का प्रेस संस्थान, रिपोर्टर सन्स फ्रंटियर, दक्षिण एशिया स्वतंत्र मीडिया एसोशिएशन, यूनेसको, वर्ल्ड एसोसिएशन ऑफ रेडियो कम्यूनिटी ब्राडकॉस्टर, वर्ल्ड न्यूज पेपर एसोसिएशन, वर्ल्ड प्रेस फ्रिडम कमेटी।

६ भट्टराई, बिंदो २००८ मिशनः प्रेस फ्रिडम : एन आकाउंट ऑफ द इंटरनेशनल प्रेस फ्रिडम एंड फ्रिडम ऑफ एक्सप्रेसन टू नेपाल २००५-०८

७ आइबिड

ऐसी व्यवस्था बनायी जाएगी जो जिलों की सुरक्षा की स्थिति का जायजा लेगी। जिलों में यह अभियान राष्ट्रीय मानवधिकार आयोग के सहयोग से संचालित किया जाएगा।

एफएनजे के वर्तमान अध्यक्ष धर्मेंद्र झा महसूस करते हैं कि पत्रकारों के कार्य के अनुरूप उनकी शारीरिक सुरक्षा की कमी है और कभी-कभी उनकी जान पर भी बन आती है. वह कहते हैं, -कानूनी रणनीति अपनाने की संस्कृति पेश की जानी चाहिए, केस दर्ज किए जाएं और उनका तार्किक समाधान निकलें। हम लोग अपने वकील दोस्तों के साथ मिल कर एक प्रकोष्ठ बना कर स्पीडी ट्रायल की कोशिश कर रहे है। नहीं तो यह घटिया कानूनी पद्धति ऐसे ही रहेगी और मानवाधिकारों का उल्लंघन होता रहेगा. असुरक्षा खत्म नहीं होगी।

स्थिति की गंभीरता को समझने के लिए उदाहरण के लिए सिर्फ एक ही मामला नहीं कि इससे प्रशासन इसे बदल देगा। माओवादी जनदिशा के धनगाधी संस्करण के संपादक जेपी जोशी के मामले को देखें, वे आठ अक्टूबर 2008 को गायब हो गये और उन्हें 28 नवंबर को बरामद किया गया। इसकी जांच के लिए एक आयोग गठित की गई है. तब भी, एफएनजे के केंद्रीय कमेटी के सदस्य रामजी दहल ने सूचना के अधिकार कानून के तहत आवेदन कर कहा है कि 30 लाख नेपाली रुपिया खर्च कर इस आयोग का गठन किया गया लेकिन अब तक जनता के सामने उसने कोई रिपोर्ट पेश नहीं की है।

इसी तरह 2007 में हुए बीरेंद्र शाह के अपहरण और हत्या के मामले में अभियोजन पक्ष के वकील के अनुपस्थिति में संदेह का लाभ देकर दोषियों को उपकृत किया गया। नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी ने कहा कि माओवादियों ने शाह की हत्या की।

पाकिस्तान

तनाव के बीच पत्रकारिता

एक देश के रुप में जिसने अपनी जिंदगी के आधे से ज्यादा समय सैन्य तानाशाहों के साथ बिताया है, पाकिस्तान खतरों की मिसाल है, जिस्का पत्रकार सामना करते हैं जबकि मजबूत प्रेस मौजूद है जबकि अन्य लोकतांत्रिक संस्थाएं कमजोर है देश के जन्म के बाद से, मीडिया, या अधिक विशेष रूप से पत्रकारों के समुदाय, लोकतंत्र और जवाबदेही के लिए संघर्ष मे सबसे आगे रहा है पाकिस्तान में पत्रकारों ने टिप्पणी की है कि मीडिया और सैन्य, देश के केवल संस्थान हैं जिनको कभी पीछे नही किया गया है, हालांकि पत्रकार तानाशाही शासनों पर संतुलन के अभाव में और अधिक कमजोर है।

संघर्ष की कवरिंग और दंडाभाव का अनवरण

मजहर अब्बास, वरिष्ठ पत्रकार और पत्रकारों की पाकिस्तान फेडरल यूनियन (*PFUJ*) के पूर्व महासचिव का कहना है ''लगभग सारा पाकिस्तान ही संघर्ष क्षेत्र है,''। वह कहते हैं कि मीडिया घराने अपने कार्यकर्ताओं की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिये पर्याप्त नही कर रहे हैं। सेवा की सुरक्षा पूरी तरह से अनुपस्थित, बीमा कवर और सुरक्षा प्रशिक्षण

इंटरनेशनल प्रेस फ्री डम पाकिस्तान में हाल में चल रहे घटनाक्रमों को देखते हुए एक मिशन बना रहा है कि वो स्थानीय और वैश्वीक मीडिया के सघों को यहां एकजुट होकर काम करने का सही माहौल दे।

महिला पत्रकारों की संख्या इधर बीच पाकिस्तानी पत्रकार संघ में तेजी से बढ़ रहा है लेकिन यह परिस्थितियां बड़े संघर्श के बाद बनी है।

प्रदान नहीं किये जा रहे हैं, और आवश्यक सुरक्षा उपकरण जैसे जैकेट आसानी से उपलब्ध नहीं हैं, यहां तक कि संघ शासित कबायली क्षेत्रों (फाटा) बलूचिस्तान और उत्तर पश्चिम सीमांत ''प्रांत के घोषित संघर्ष क्षेत्रों में काम कर रहे पत्रकारों के लिए भी नही।

मार्शल लॉ के तहत आलोचना और यंहा तक की सेना की भूमिका के बारे में लिखना खतरनाक थी और यंहा तक कि प्रतिबंध भी लगसकता था। पाकिस्तान में अमेरिका की भूमिका की आलोचना भी सरकार के लिए परेशानी का एक क्षेत्र था, विशेष रूप से सितंबर 2001 के बाद सैन्य अभियान में जो 2007 के मध्य से तेज हो गये हालांकि, जनरल परवेज मुशर्रफ के बाद और 2008 में एक लोकतांत्रिक सरकार के आने के बाद, मीडिया का परिदृश्य बदल गया। सेना देश और अमेरिका के बीच के आम मामलों में दखल अंदाजी कम हो गयी। वह एक पवित्र गाय की तरह काम करने लगी, इसके कृत्य की मीडिया में काफी आलोचना होने लगी। जबकि बीबीसी के द्वारा 2008 में लगभग सभी 28 देशों में करवाये गये एक जनमत सर्वेक्षण में अमेरिका की दुनिया में भूमिका के प्रति लोगों की धारणा में सुधार हुआ था, केवल तुर्की और पाकिस्तान ने इस धारणा को खारिज कर दिया था।

पत्रकारों को धमकी अब सरकार या सेना से अधिक उग्रवादी गुटों की ओर से अधिक आने लगी। सामना टीवी लाहौर के ब्यूरो चीफ हबीब अकरम कहते हैं कि ''तालिबान तो छाया है व्यक्ति नही है, ईमेल नकली पते और फोन कॉल अज्ञात नंबर से बना से भेजा जाता है। पत्रकार वास्तव में इन धमकियों को गंभीरता से नहीं लेते हैं, जबकि पूरा समाज बहुआयामी धमकियों के अंतर्गत है।''

जबकि वहा पाकिस्तान के युद्ध क्षेत्र में पत्रकारिता के लिये निश्चित प्रवृत्ति नही है, लेकिन सेना के द्वारा हाल ही में कब्जाये गये क्षेत्र में मीडिया टीम को ले जाने का चलन है। उदाहरण के लिये स्वात घाटी। लेकिन वंहा जाने के अभाव के कारण कहानी के सभी पक्षों को कवर करना लगभग नामुमकिन है। वरिष्ठ पत्रकार फहद हुसैन संतुलन कायम करने के लिये अलग तरह का बदलाव देखते हैं। वह कहते हैं कि ''एक साल पहले तक, मीडिया में अस्पष्टा थी, जो कि तालिबान विरोधी और तालिबान से सहानुभूति रखने वालों में विभाजित थी।'' लेकिन 2009 की मार्च-अप्रैल में, स्वात घाटी में प्रमुख सैन्य अभियान के बाद, मीडिया की प्रतिक्रिया में जबरदस्त बदलाव आया है। अचानक जब तालिबान घर के नजदीक आ गया और बुनेर जो कि इस्लामाबाद से केवल 60 किमी पर है, में घुस गया तब इसने मीडिया को हिला दिया। इसी प्रकार एक महिला को सार्वजनिक रुप से कोड़े लगाने वाले वाडियो ने इन 'पवित्र योद्धाओं' के प्रति धारणा को बदल दिया।'

जब स्वात घाटी के लोग 2009 में राहत शिविरों में उमड़े, इसने उस क्षेत्र के लोगों के साथ सीधे बातचीत के लिये पहली बार अवसर मुहैया किया। स्वात घाटी से कई पत्रका भी विस्थापित थे और जीवनयापन के लिये संघर्ष कर रहे थे। पहली बार मुख्यधारा मीडिया को स्वात घाटी के आम लोगों की जरुरतों के लिये ध्यान देने पर मजबूर कर दिया था। इस अनुभव ने आतंकवाद के प्रति मीडिया में धारणाओं को बदल दिया।

डेली टाइम्स के पेशावर के व्यूरो चीफ और सीमाविहीन पत्रकारों के प्रतिनिधि इकबाल खटक कहते हैं कि ''11 सितम्बर 2001 के बाद स्थानीय टेलिवीजन के पास दुनिया का ध्यान आकर्षित करने के लिये उपकरण नही थे क्योंकि इसका झुकाव केवल पाकिस्तान और कबायली इलाकों तक ही है। पत्रकार बिना किसी प्रशिक्षण के दौड़ पड़े।'' ''कई पत्रकारों के इसकी कीमत अपनी जान देकर चुकानी पड़ी और काम करते हुये मरते रहे।'' तकनीकी उच्चता,जैसे कि घटना को उचित दूरी से जूम लैंक की मदद से कवर करना, और इसके साथ ही सबसे कमजोर स्थानो पर आयोजित साधारण सुरक्षा के उपायों के लिये प्रशिक्षण कई जिंदगियां बचा सकता था। कबायली इलाकों में पत्रकार सबसे अधिक खतरे में हैं। यहाँ वे न केवल उग्रवाद और सरदारों का प्रभाव झेलते हैं, बल्कि वेतन और काम की परिस्थितियों के संदर्भ में असुरक्षा का सामना करते हैं। संकट के समय में, जैसे कि 2009 के स्वात में सैन्य अभियान के दौरान, पत्रकारों के खैबर संघ, के एक सहयोगी, ने सक्रिय रूप से, परेशान पत्रकारों को समर्थन किया ताकि वो जनता को सूचना देने का अपना काम जारी रख सकें।

पीएफयूजे के अनुसार ,फरवरी 2008 से मई 2010 तक, उन मीडिया कार्यकर्ताओं को छोड़कर जो परस्पर गोलीबारी का शिकार हो गये या काम पर रहते हुये मारे गये, कम से कम 9 पत्रकार लक्षित हत्या शिकार हुये गुलाम रसूल बिरहामणि, डेली सिंधू, वाही पंधी प्रांत, मई 2010; आशिक अली मांगी, मेहरान टीवी, खैपुर में, फरवरी 2010; जेनुल्लाह हाशिमजादा, पेशावर में एक स्वतंत्र पत्रकार, शमशाद टीवी, जमरुद खैबर ऐजेंसी,अगस्त 2009, मुसाखान खेल, जियो टीवी और द न्यूज, स्वात

मीडिया को कोड़े मारना

पहले सैन्य शासक अयूब खान(1959-68) से लेकर, और विशेषरुप से जिया युग में पत्रकारों को पहला झटका लगा। 1977 में, जनरल जिया उल हक मीडिया पर दबाब बनाने के लिये उर्दु दैनिक मुसावात और हुमत से शुरु करते हुये, कई व्यापक प्रगतिशील समाचार पत्रों को बंद कर दिया जो कि मार्शल लॉ शासन के लिये अहम थे। डेली टाइम्स और साप्ताहिक अल फतह और मेयर को भी बंद कर दिया गया। हजारों पत्रकार बेरोजगार हो गये। पत्रकार समुदाय, पीएफयूजे और एपीएनईसी के द्वारा संगठित, होकर उत्साही प्रतिरोध जताया। भूख हड़ताल, रैलियां, सड़को पर बैठना और कोर्ट गिरफ्तारी नियमित हो गये थे। इस आंदोलन के समय यह हुआ कि चार पत्रकारों को 21 कोड़ों की सजा- राजनीतिक हिरासत के लिये शर्मनाक रुप- हुई। जबकि मसुदुल्लाह खान पर यह सजा लागू नही हुई क्योंकि वह अपाहिज था, बाकि तीन ने साहस के साथ कोड़ो का सामना किया। खवार नईम हाशमी उन तीन में से एक था जिन्हे कोड़े लगे। नजीर जैदी, डेली न्यूज के, कोड़ो की सजा से नही झुके। जैसे जैसे उनकी मुलायम त्वचा पर एक एक कोड़ा पड़ता गया उन्होने जिया के खिलाफ चीख चीख कर नारे लगाये। यह जिया युग के दौरान हुआ कि जेल के बाहर सार्वजनिक सभा हुआ करती थी- एक अभ्यास जो कि उससे पहले या बाद में कभी नही हुई। इसी प्रकार कैदियों के बीच कोई भी संभावित गठजोड़ को तोड़ने के लिये, हिरासत में पत्रकारों पर दूसरे कैदियों के द्वारा कोड़े लगाये गये।

इकबाल जाफरी, कराची में 22 साल का रिपोर्टर, भी उन कोड़े खाने वालों मे से एक था। अब दैनिक नवा-ए-वक्त, खफा जाफरी कहता है, जब आंदोलन शुरु हुआ, वो सफेद कॉलर वाले प्रदर्शनकारी लेकर आये ताकि हम जैसे गिरफ्तारी और जेल की गंदी स्थिति से साहसहीन हो जाये। लेकिन जब यह नही हुआ तो कोड़ो का उपयोग कठोर संदेश भेजने के लिये किया गया उनके लिये जो प्रतिरोध जारी रखे हुए थे। लेकिन इसका उल्टा असर हुआ आंदोलने ने हवा पकड़ ली। पीएफयूजे के गहन दबाब के बाद, कई समाचार पत्र फिर से शुरु कर दिये गये। यह मीडिया समुदाय का साहस था जिसने राजनीतिक और नागरिक आंदोलन को तानाशाही शासन के खिलाफ एकजुट होने और साहसी होने में मदद की। आंदोलन में माडिया समुदाय का नेतृत्व, लोकतंत्र की सुरक्षा में जारी रहा जैसा कि जनरल मुशर्रफ के सैन्य शासन काल के दौरान जाहिर हुआ।

में, फरवरी 2009, आमार वाकिल, अवामी इंकलाब, कोहट, जनवरी 2009, अब्दुल रजाक जोहरा, रोयाल टीवी, पंजाब में, नवम्बर 2008, मोहम्मद इब्रहिम, एक्सप्रेस टीवी और डेली एक्सप्रेस, खार, बजाउर कबाइली इलाका मई 2008; खादिम हुसैन शेख, खबरें बलुचिस्तान, अप्रेल 2008; और चिश्ति मजाहिद, अकबर-ए-जहां, क्वेटा, बलुचिस्तान, फरवरी,2008।

पत्रकारों पर क्रूर हमलो का उनके परिवार के सदस्यों पर हमलो से मिलान कराया गया जिसमें नवम्बर 2006 में दिलावर ख़ान वज़ीर, दक्षिण वजीरिस्तान में बीबीसी संवाददाता के भाई 16 वर्षीय तैमूर खान की यातना सहित हत्या शामिल है। दिसंबर 2005 में, हयातुल्लाह खान, उर्दू दैनिक औसफ और द नेशन के लिए उत्तरी वजीरिस्तान में एक संवाददाता और एक यूरोपीय प्रेस फोटो एजेंसी के लिए एक फोटोग्राफर, का एक विस्फोट पर रिपोर्टिंग के बाद अपहरण कर लिया था जिसमें अल कायदा के वरिष्ठ सदस्य माजा राबिया मारा गया था। हयातुल्लाह की जून 2006 में हत्या कर दी गयी। उनके छोटे भाई और पत्नी को भी बाद में हत्या कर दी गई।

खटक के अनुसार, 2002 से मई 2010 तक, 32 पत्रकार काम करते हुये मारे गए। कोई उचित जांच नही की गयी। केवल हयातुल्लाह की हत्या का मामला न्यायिक जांच का विषय बना, जिसके लिये पीएफयूजे के दबाव में आदेश दिया गया था। जबकि औपचारिक रुप से रिपोर्ट को सार्वजनिक नही किया गया था और अनाधिकारिक प्रचारित जांच की सिफारिश थी कि यदि कबायली इलाकों में उचित जांच की गयी तो हत्यारे को पहचानने के वहां पर पर्याप्त सबूत होंगे। हालांकि आदिवासी क्षेत्र पेशावर उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं। इसी प्रकार, मुसा खान खेल हत्या के मामले में, जांच समिति की कोई बैठक ही नहीं हुई। केवल वाल स्ट्रीट जनरल के दक्षिण एशिया ब्यूरो चीफ अमेरिकी डेनियल पर्ल के मामले में, जो कि फरवरी 2002 में अपहरण करके मार दिया गया, त्वरित जांच और अभियोजन हुआ, अहमद ओमार सईद शेख को जुलाई 2002 में दोषी ठहराया। कथित तौर पर मुशर्रफ ने व्यक्तिगत तौर पर उस जांच को देखा जिसको अमेरिकी दबाब में तेजी से किया गया था।

लक्षित पत्रकारों के परिवारों पर चुप रहने के लिये जबरदस्त दबाब या मामले को आगे ले जाने से रोकना, इन कारणों से पीएफयूजे ने मारे गये पत्रकारों के परिवारों की सुरक्षा और मुआवजे के लिये प्रावधान करने पर जोर दिया। अधिकारियों के द्वारा दोषियों को सजा दिलाने में विफलता कानून का नियम और अच्छे शासन की अनुपस्थिति के लक्षण हैं। जब तक कि सभी संस्थानों में जवाबदेही के लिये कोई व्यवस्था नही सुधारी जाती, कम अवसर हैं कि जो पत्रकारों को चुप कराने का प्रयास करने का अपराध करते हैं, वो इस अपराध के लिये सजा भुगतेंगे। तब यह पत्रकारों के शरीरों पर रोना ही रहेगा, प्रेस के लिये लोकतंत्र में जवाबदेही की चुनौती, जंहा ''दुश्मन'' पहचान योग्य नही है जैसा कि मार्शल लॉ के दौरान होता है।

फरवरी २००६ में मूसा खान खेल की हत्या के विरोध में एकत्र होते पेशावर के पत्रकार।

पत्रकारों के अधिकारों के लिए संघका ऐतिहासिक संघर्ष

प्रेस ने उपमहाद्वीप में औपनिवेशिक विरोधी आंदोलनों में एक जीवंत योगदान किया था और ब्रिटिश राज के खत्म होने पर उभरे स्वतंत्र देशों भारत और पाकिस्तान में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही। डॉन या मनशूर, जो कि मोहम्मद अली जिन्नाह ने स्थापित किये थे, हमीद निजामी के द्वारा शुरु किये गये नवा-ए-वक्त और मियां इफ्तिखारुद्दीन की अध्यक्षता में प्रोग्रेसिव पेपर लिटिमेड (पीपीएल) के प्रकाशन, जबकि दृढ़ता के साथ राष्ट्रवादी एक मजबूत औपनिवेशिक विरोधी रुख रखते थे ने पत्रकारिता के उच्चतम मानकों को सही ठहराया। प्रेस ने राष्ट्र के मामलों में एक सक्रिय और सतर्क भूमिका निभाई है, खासकर के चूंकि अन्य राजनीतिक और लोकतांत्रिक संस्थान अभी तक कमजोर थे। शुरुआती सरकारों से लेकर नवगठित राष्ट्र में मजबूत राजनीतिक विपक्ष या जवाबदेही की संस्थागत तंत्र के अभाव में सत्ता की शक्तियों का दुरुपयोग हो सकता है।

पाकिस्तान की संविधान सभा द्वारा अपनाये गये दमनकारी सुरक्षा अधिनियम की निंदा करने वाला पीएफयूजे सबसे पहला संगठन था। पीएफयूजे का अक्टूबर 1993 का संकल्प, अधिनियम के कठोर प्रावधानो पर प्रकाश डालता है ''यह कार्यकारी प्रदान करता है, परीक्षण के बिना हिरासत में या अन्यथा पाकिस्तान विदेशी मामलों में दखलअंदाजी करने के लिये झूठे आरोंपो में दोषी ठहराना, एक अपरिभाषित अपराध जिसके लिये यहां तक कि एक विदेशी सरकार ने उनके मनमाने कानून के तहत भी दंडित नही किया राष्ट्रीय प्रेस को नियंत्रित करने के लिये अधिनियम में विशेष प्रावधान अखबारों पर अपनी जानकारी के लिये स्रोत की पहचान का खुलासा करने का दबाब बनाकर अन्यथा जेल में डाल दिये जाने की धमकी देकर, विदेशी मामलों पर विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति और सही जानकारी के प्रसार को दबाने के लिये सरकार को शक्ति प्रदान करती है। पीएफयूजे मानती है कि एक देश में जहां कार्यकारी के पास ऐसी मनमानी शक्तियां हों वहां स्वतंत्र प्रेस हो ही नही सकती और स्वतंत्र प्रेस के बिना सच्चा लोकतंत्र नही हो सकता। यह बैठक इसलिये निन्दा कानून के निरसन की मांग करती है।''

पीएफयूजे और लोकतांत्रिक मूल्यों के लिये खड़े सभी नागरिक संगठनों के लिये पहली प्रमुख चुनौती, सेना कमांडर, जनरल अयूब खान, के द्वारा 8 अक्टूबर 1958 को मार्शल लॉ की घोषणा के साथ सामने आयी जब पाकिस्तान मुश्किल से अपने दूसरे दशक में था। नेशनल सभा को भंग कर दिया गया, संविधान को भंग कर दिया गया, राजनीतिक पार्टियों पर प्रतिबंध लगा दिया गया और प्रेस के द्वारा आलोचना पर रोक लगा दी गयी। इस ''रक्तहीन क्रांति'' के एक सप्ताह में, लैलो नहर साप्ताहिक के संपादक सयैद सिब्ते हसन, इमरोज के संपादक अहमद नदीम काजमी और कवि और पाकिस्तान टाइम्स के मुख्य सम्पादक फैज अहमद फैज, (पीपीएल के द्वारा सभी प्रकाशित) सुरक्षा अधिनियम के तहत हिरासत में ले लिये गये। वे पांच महिने के बाद न्यायपालिका की दखल अंदाजी के बाद छोड़े गये। लेकिन स्वतंत्र प्रेस पर नियंत्रण करने और उसको सेंसर करने के लिये एक ''सलाहकार'' तंत्र का निर्माण किया गया। अयूब खान इससे एक कदम और आगे गये और पीपीएल अखबार का अधिग्रहण कर लिया जब उन्होने शासन का समर्थन करने से इंकार कर दिया। जबकि कुछ मामलों में, प्रबंधन ने स्टाफ को वश में कर लिया, पीएफयूजे ने इस अधिग्रहण का विरोध करते हुये एक संकल्प किया।

प्रेस पर आगे सरकारी नियंत्रण कसने के उद्देश्य से 1963 में जब राष्ट्रीय प्रेस ट्रस्ट और नेशनल प्रकाशन लिमिटेड को स्थापित किया गया, पीएफयूजे ने फिर से विरोध जताया, और स्वतंत्र मीडिया पर विनाशकारी प्रभाव के लिये चेतावनी दी। विशेष अखबारों के भी प्रतिरोध के अपने तरीके थे। द प्रेस इन चेन्स के लेखन ज़मीर नियाजी लिखते हैं ''4 सितम्बर 1963 को डान ने एक प्रेस नोट बिना किसी रेखा को मिटाए, प्रकाशित किया। यह लिखता है: 'प्रेस सूचना विभाग पाकिस्तान, रावलपिंडी: फोन 62276; कराची 2674; डक्का 3050; हैंडआउट इ.न.1221-के'। तब इसने शीर्षक लिया जो कि पेपर पर सबसे ऊपर दिया गया। यह आइटम स्टेनो-टाइपिस्ट के नाम, और तिथि के साथ खत्म हुआ। यह विरोध दर्शाने की सरल यद्यपि शक्तिशाली तकनीक थी जिसने नये कानून का मखौल उड़ाया। डॉन नये अध्यादेश की इसके समग्रता में पीछा कर रहा था। अध्यादेश के एक वर्ग में कहा गया कि ''प्रेस नोट्स और हैंडआउट्स को शब्दश: बिना किसी विलोपन या सुधार के मुद्रित और प्रकाशित किया जाना था''। पीएफयूजे की उत्साही विरोध के बाद, 10 दिन पुराना प्रेस और प्रकाशन अध्यादेश 1963 निलंबित कर दिया गया और एक नया कानून जो कि कम प्रतिबंधक था, को लागू कर दिया गया। लेकिन संघर्ष अभी तक खत्म नही हुआ था।

मिनहज बरना, एक अनुभवी पत्रकार, जिन्होने पाकिस्तान में ट्रेड

प्रेस क्लबः मीडिया समुदाय के लिये मंच

पाकिस्तान के प्रेस क्लब ने देश में पत्रकारिता के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। जब अधिकांश पत्रकार संघ, यहां तक कि आज भी, संसाधन की कमी झेल रहे थे, प्रेस क्लबों ने संघो और संगठनो को मिलने, विचार विमर्श करने और उत्साह जगाने के लिये जगह दी और अपेक्षित वातावरण मुहैया कराया। कराची प्रेस क्लब, 1958 में स्थापित, देश में ऐसा पहला संस्थान था। जबकि उद्देश्य सामाजिक और सास्कृतिक स्पेस मुहैया कराना, पेशवराना दक्षता बढ़ाना और देखभाल की गतिविधियों को बढावा देना था। कोई शक नही है कि केपीसी विशेषरुप से, और सामान्यरुप से प्रेस क्लब समय के साथ साथ राजनीतिक अखाड़े के रुप मे उभरे। उन्होने मार्शल लॉ के दौरान महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जब सार्वजनिक स्थानो पर सभाओं पर प्रतिबंध लगा दिया गया और क्लब राजनीतिक सभाओं के लिये स्थान थे। वास्तव में देशभर में प्रेस क्लब, विशेषरुप से कराची और लाहौर में दमन के भयंकर समय में मीडिया के राजनीतिक मोबीलाइजेशन के लिये अविवादास्पद फ्रंट मुहैया कराया। एतिहासिक कराची प्रेस क्लब से ही जुल्फकार अली भुट्टो ने 1967 में लोकतंत्र के पक्ष में एक आंदोलन को लांच किया। वास्तव में प्रेस क्लबों में गतिशील होना संघो की गतिशीलता का कारण बनी। एक कमरा स्थानीय संघ को दे दिया गया और अब पत्रकारों का कराची संघ ने प्रेस क्लब के परिसर में ही एक कार्यलय बना लिया है।

इसके अलावा, एक व्यापक सदस्यता के चलते जिसमें कवि, लेखक, साहित्य के लोग, प्रेस के साथ के लोग और मीडिया उद्योग के लोग शामिल हैं, प्रेस क्लबों ने मीडिया से जुड़े विभिन्न तरह के लोगों को ताकत प्रदान किया। प्रेस क्लब ने मीडिया को प्रगतिशील राजनीतिकों के साथ और नागरिक समाज संगठनों के साथ-लोकतंत्र के लिये आंदोलन में सक्रिय, जुड़ने का एक अवसर भी दिया। इसलिये केपीसी लोकतांत्रिक आंदोलन के साथ इतना पहचाना जाता था कि हेरिटेज इमारत के बाहर प्रदर्शन, विरोध रैली की गयी जिसमें न्याय के लिये लड़ रहे पत्रकार भी शामिल थे। वास्तव में दिसम्बर

करांची प्रेस क्लब के विरासत में हमेशा से मीडिया की आजादी के लिए सक्रिय और जीवंत राग रहा है।

2009 में पेशावर प्रेस क्लब पर हमला, मीडिया पर पहला आत्मघाती हमला था, पहले की धमकियों के बावजूद जनता की कल्पना में इस संस्थानों की शक्तियों को दोबारा जताना था।

कुछ उदाहरणों में, प्रेस क्लब अपने सदस्यों के लिय संसाधन उपलब्ध कराते रहे हैं जो कि संघ कर पाने में असमर्थ रहे हैं। पेशावर प्रेस क्लब, उदाहरण के लिये, मोटरसाइकिल खरीदने के लिये वित्तीय सहायता देने की बहुत ही उच्च सफलता वाली योजना निकाली। इसमें यह डाउन-पेमेंट का एक हिस्सा प्रदान करती थी और उनके लिये गारंटी बनती थी जो मोटरसाइकिल लेना चाहते थे। क्लब के सभी सदस्यों ने इस सुविधा का लाभ उठाया- पाकिस्तान में एक महत्वपूर्ण योजना, जहां पत्रकार, पुलिस और वकील सामान्यतौर पर बैंक से ऋण के लिये अयोग्य होते हैं। दूसरी सफल योजना थी लैपटॉप्स के लिये लोन। प्रेस क्लब ने सदस्यों को संघ की बैठको और सेमिनारो नें हिस्सा लेने के लिये जाने के लिये परिवहन में मदद की। यह व्यवहारिक कदमों ने व्यक्तिगत पत्रकारों की भागीदारी को और बढ़ा दिया और मीडिया समुदाय की एकजुटता को मजबूती प्रदान की।

यूनियन आंदोलन को कलमबद्ध किया है, लिखते हैं कि पीएफयूजे की प्रेस की स्वतंत्रता के लिये संघर्ष में 1968 एक अहम साल रहा है। ''1968 का पूरा साल और 1969 की शुरुआत (अंततः जनरल याह्या खान के नेतृत्व नया मार्शल लॉ शासन का अंत) जनरल अयूब के निरंकुश शासन के खिलाफ लोगों की महान लहर द्वारा चिह्नित किया गया। हताश और निराश, अयूब शासन को अधिक से अधिक दमनकारी उपायों का सहारा था। प्रेस के आसपास फंदा और कस दिया गया।'' 1966 में दैनिक इत्तिफाक के प्रतिबंध के बाद, सरकार ने ढाका पूर्वी पाकिस्तान (अब ढाका, बांग्लादेश की राजधानी) में साप्ताहिक पत्रिका पुरबानी और साप्ताहिक चट्टान, लाहौर को बंद कर दिया। पत्रकारों को बिना ट्रायल के भी हिरासत में डाल दिया गया और कुछ अखबारों को दिये जाने वाला सरकारी विज्ञापन का आवंटन वापस कर लिया गया नवा-ए-वक्त, लाहौर, इब्रात, हैदराबाद और पाकिस्तान ऑब्जर्वर, आजाद और ढाका से प्रकाशित संगबाद। पीएफयूजे की संघीय कार्यकारी परिषद (*FEC*) 15 दिसंबर से 17 दिसम्बर, 1968, तक मिले और कहा: ''एफईसी यह मानता है कि यह सबसे बड़ा जोखिम है जिसका राष्ट्रीय प्रेस ने सामना किया है और इसलिये प्रेस की स्वतंत्रता की बहाली की पुष्टि पहले से कहीं अधिक आवश्यक है।''

इसके बाद पूर्वी पाकिस्तान में काफी उथल - पुथल का दौर था , अंत में जिसने मुक्ति युद्ध और 1971 में बांग्लादेश को जन्म दिया। फिर भी सरकारी नियंत्रित मीडिया पाकिस्तान के लोगों की सच्चाई का दमन किया, मिथक को जारी रखते हुये कि ''सब कुछ नियंत्रण में था'। यह 17 दिसम्बर 1971 का दिन था, कि पाठकों को अचानक बताया गया कि युद्ध विराम एक समझौते पर पहुच गया और देश को विभाजित किया

जाना था। पाकिस्तानी सेना की हार और अत्याचार जो वे बांग्लादेश के लोगों पर ढाते थे धीरे-धीरे सार्वजनिक हो गई, और इसने प्रेस के बढ़ते अविश्वास में योगदान दिया।

हालांकि, यंहा तक की मार्शल लॉ को हटा लेने के बाद, चुनौती जारी रही। 1970 तक, चार मुख्य मीडिया प्रतिनिधि संगठन थे: 1950 में स्थापित पीएफयूजे, 1976 में स्थापित पाकिस्तान अखबार कर्मचारी महासंघ (*APNEC*); ऑल पाकिस्तान अखबार सोसायटी(*APNS*), 1953 में स्थापित अखबार मालिक संगठन; और 1957 से स्थापित पाकिस्तान अखबार संपादक परिषद, ''*OOAPNS* और *CPNE* ने आम तौर पर सैन्य शासन के साथ समझौता कर लिया और पीएफयूजे पर संघर्ष को जारी रखने के लिये छोड़ दिया'' मीडिया विश्लेषक प्रोफेसर तौसीफ अहमद कहते हैं, जिन्होने पाकिस्तान में मीडिया संगठनों के इतिहास को प्रलेखित किया।

जुल्फिकार अली भुट्टो के राष्ट्रपति शासन में दिसंबर 1971 में पूर्वी पाकिस्तान के विभाजन के बाद में शपथ ग्रहण के तहत, पत्रकारों ने मीडिया को दबाने के प्रयास के खिलाफ संघर्ष जारी रखा। भुट्टो और उनकी पार्टी कठोर कानून, विशेष रूप से प्रेस और प्रकाशन अध्यादेश, राष्ट्रीय प्रेस ट्रस्ट की समाप्ति, और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को सरकार के नियंत्रण से स्वतंत्र बनाने के लिये अपनी प्रतिबद्धताओं का सम्मान करने में विफल रहा। वयोवृद्ध पत्रकार और तब के पीएफयूजे के अध्यक्ष मिनहाज बरना याद करते हैं ''सत्ता में आने के केवल दो महिन के बाद, सरकार ने जिसका मुख्य नारा 'लोकतंत्र हमारी राजनीति है', लाहौर के दो साप्ताहिक और एक मासिक जिसका नाम पंजाब पंच, उर्दु डाइजेस्ट और जिंदगी को मार्शल लॉ के अंतर्गत प्रतिबंधिक कर दिया। (भुट्टो उस समय दोनों राष्ट्रपति और चीफ मार्शल लॉ प्रशासक था)। आदेशों में, संपादको को न केवल जेल हो गयी बल्कि 10 सालों तक किसी भी अखबार को संपादन करने पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया। सामान्य कानून के तहत उनको खुली अदालत में ट्रायल का अवसर नही दिया गया। पीएफयूजे ने सरकार के इस कदम की निंदा की और पत्रिकाओं पर लगे प्रतिबंध को हटाने और उसके संपादको को रिहा करने की मांग की। संपादको को रिहा कर दिया गया और और प्रतिबंध को हटा दिया गया।' पत्रकारों के पंजाब संघ के अध्यक्ष राय हुसैन ताहिर बताते हैं, ''विरोध के एक रचनात्मक तरीके में, प्रतिबंध को दरकिनार करते हुये, जिंदगी को हर सप्ताह एक अलग नाम से निकाला गया।''

असहमत प्रेस को और नीचे दबाने के प्रत्यक्ष साधन के अलावा, भुट्टो युग ने अखबारी कागज और विज्ञापनों, प्रेस के अस्तित्व के लिए आवश्यक दोनों माध्यम, पर तंग नियंत्रण के द्वारा उत्पीड़न भी देखा।

1977 में जिया उल हक के शासन के अतंर्गत मार्शल लॉ की वापसी ने प्रेस को नियंत्रित करने के क्रूर तरीके देखे। संपादक और वरिष्ठ पत्रकारों को गिरफ्तार कर लिया और सश्रम कारावास में डाल दिया गया और यहां तक कि कुछ को कोड़े भी लगाये गये। पीएफयूजे और अन्य निकायों जैसे कि एपीएनईसी के द्वारा की गयी पेशकश इस दौरान उतनी ही यादगार थी जितनी की दमन के दौरान थी। यह संघर्ष 1977 की नवम्बर में कराची में शुरु हुआ था, जिया द्वारा अधिग्रहण करने के मुश्किल से पांच महिनो के बाद ही। पीएफयूजे का संघर्ष सरकार के द्वारा कराची से प्रकाशित दैनिक मुसावात के प्रकाशन पर प्रतिबंध के बाद से शुरु हुआ। जब प्रतिबंध उठाने के लिए मार्शल लॉ के अधिकारियों के साथ पैरवी सफल नहीं हुई, तब पीएफयूजे और एपीएनईसी ने 1 दिसम्बर 1977 से कराची में भूख हड़ताल शुरु कर दी, जिसमें सारे पाकिस्तान के पत्रकार और मीडिया कर्मियों की भागेदारी रही। परिणामस्वरुप प्रतिबंध को उठा लिया गया। अगले साल इन प्रतिबंधो के परिणामस्वरुप तेज अभियानों की शुरुआत हुई। ऐसा सम्मान था कि पीएफयूजे ने आज्ञा दी कि जिया, संघ को कुचलने में हार के बाद, पत्रकार समुदाय को विभाजित करने के प्रयास में एक समानांतर और वफादार संघ (राशिद सिद्दीक समूह) की स्थापना की।

1989 से 12 अक्टूबर 1999 तक, पाकिस्तान, बेनजीर भुट्टो और नवाज शरीफ के नेतृत्व वाली नागरिक सरकारों के शासन के अधीन था, दोनों के लिये दो काल। इस अवधि में चारों नागरिक सरकारों में से कोई भी कार्यकाल पूरा नहीं कर पायी। यद्यपि यह चरण प्रेस के लिये उतनी चिंता की बात नहीं थी जितनी कि तीन सैन्य सरकारों के काल के दौरान थी। यह कार्यकारी ज्यादतियों और जुल्म से मुक्त नहीं किया गया था। मिनहाज बरना के शब्दों, ''अपने दूसरे कार्यकाल में, पीपीपी सरकार ने कंराची के तमाम दैनिक समाचार पत्रों (आवाम, कौमी अखबार, पब्लिक, आगाज़ और इवनिंग स्पेशल) पर, लोक व्यवस्था का रखरखाव अध्यादेश के तहत प्रतिबंध लगा दिया था। हालांकि इसके द्वारा दो बिंदु सिद्ध करने के कुछ दिनों के भीतर यह प्रतिबंध हटा लिया गया था। एक लोकतंत्र और प्रेस की स्वतंत्रता के प्रति प्रतिबद्धता के पेशे के बावुजूद, यंहा तक कि पाकिस्तान में नागरिक सरकारें आलोचना और उनके गलत शासन के संभावित खुलासे के प्रति असहिष्णु थीं। दो, दो, प्रेस और प्रकाशन अध्यादेश से नफरत के अलावा, कानून की किताब में सैकड़ो अलोकतांत्रिक कानून हैं जैसे कि एमपीओ जो कि सराकार के द्वारा मनमाने ढंग से समाचारपत्रों और पत्रकारों के खिलाफ इस्तेमाल कर सकती हैं। इसी प्रकार जंग समूह के समाचारपत्रों का प्रबंधन को अगस्त 1998 के बाद से उत्पीड़न किया गया और फ्राइडे टाइम्स के संपादक निजम सेठी को 8 मई 1999 को गिरफ्तार कर लिया गया, नवाज शरीफ की सरकार द्वारा हिरासत में लेने के बाद अत्याचार किया जाना फांसीवादी सरकारों द्वारा इस्तेमाल तरीके की याद ताजा दिलाती है। पीएफयूजे और एपीएनईसी ने इन तामसिक कार्रवाई की न केवल जोरदार निंदा की बल्कि देश भर में विरोध रैलियों का आयोजन किया। सरकार को अंततः अपने कार्यों को वापिस करने पर मजबूर किया गया।''

जब मुशर्रफ ने 1999 में एक सैन्य तख्तापलट के बाद प्रधानमंत्री शरीफ को हटा दिया, मुश्किल से ही कोई विरोध हुआ क्योंकि 1997 से ही शरीफ भ्रष्ट, प्रत्येक संस्थान की स्वतंत्रता के प्रति असहनीय सिद्ध हुआ, जिसमें न्यायपालिका, नौकरशाही, संसद और प्रेस शामिल हैं। मुशरर्फ के कार्यकाल में विशेष रुप से रेडियो और निजी टेलिविजन चैनल काफी मात्रा में विकसित हुए जिससे स्वतंत्र जानकारी को बढ़ाया। वास्तव में, मुशर्रफ शुरुआत से ही स्वतंत्र मीडिया के पक्ष मे थे, लेकिन 2001 में 'आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध शुरू होने और 2002 के जनमत संग्रह के बाद उनकी समस्याओं में बढ़ोत्तरी के बाद उसने खुद को एक तानाशाह के रूप में आयोजित करना के बाद शुरू किया।

बढ़ते हमलों और धमकियों के साथ, अतिरिक्त कानूनी और सेंसरशिप कानूनों के माध्यम से मीडिया को स्वतंत्रता ने सिकुड़ना शुरु कर दिया। नवंबर 2007 में आपातकालीन स्थिति के राष्ट्रीय राज्य की घोषणा ने स्वतंत्र मीडिया के प्रति कठोर नीति अपनायी गयी, केवल सरकारी चैनल पीटीवी को प्रतिबंध के बिना खबरे प्रसारित करने की अनुमति थी। इसके बाद वकीलों और पत्रकारों के नेतृत्व में लोकतंत्र के लिये लड़ाई मूलभूत राजनीतिक स्वतंत्रता को पाने में सफल रही। इन फायदों को 2008 में हुये चुनाव में समेकित किया गया जब प्रधानमंत्री यूसूफ रजा गिलानी की पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी सरकार (पीपीप), पूर्व राष्ट्रपति बेनजीर भुट्टो की हत्या के बाद उत्पन्न सहानुभूति की लहर से दिसम्बर 2007 में सत्ता में आ गयी। लेकिन गंभीर चुनौतियां भी हैं, जो कि जुलाई 2010 की शुरुआत में देश में आयी बाढ़ में और बढ़ गयी: एक ढहती अर्थव्यवस्था, आवश्यक वस्तुओं के बढ़ते दाम, बढ़ती बेरोजगारी, आदिवासी क्षेत्रों में आतंकवाद, सीमापर इस्लामिक उग्रवाद ने स्थिति को बद से बदतर कर दिया।

जैसे, पाकिस्तान में कम रंग के साथ मीडिया का बड़ा कैनवास का विरोधाभास, इस्लामी पार्टियों के नेतृत्व में परंपरावादियों और मुशर्रफ के द्वारा आरम्भ की गये और नागरिक समाज के कुछ वर्गों द्वारा समर्थित ''प्रबुद्ध मॉडरेशन के एजेंडे'' के बीच वैचारिक लड़ाई का एक प्रतिबिंब है। इन संकीर्ण दृष्टि से तैयार किया गयी बहस की अनुमति देने से इनकार करके,पीएफयूजे का एजेंडा अधिक कट्टरपंथी था।

जमीनी स्तर पर आंदोलन, विविध विरोध

पीएफयूजे ने 1950 अप्रैल में कराची में पाकिस्तान कार्य पत्रकार सम्मेलन में इसके संविधान को अपनाया। इसने देश में लोकतंत्र की एक मजबूत आवाज अस्तित्व में आयी, जो कि तमाम बाधाओं के बावजूद एकजुट रही। पीएफयूजे तब से पत्रकारों के अधिकारों के लिये संघर्ष में अग्रणी रहा है। संस्थागत तंत्र के अभाव में, जमीनी स्तर पर लोकतांत्रिक मूल्यों के अमल करने के लिये, एक संघीय संघ तंत्र के रूप में कार्य करता है। पीएफयूजे और उसके सहयोगी जिला, शहर और प्रांतीय संघ को पत्रकारों समुदाय की शिकायतों को पूरा करने के लिए एक मंच साबित हुआ। संकट के दौरान, संघ सर्वश्रेष्ठ रहा हैं। वे विपरीत परिस्थितियों में अच्छा प्रदर्शन करते हैं। जब वहाँ एक व्यापक तानाशाही है, तब संघ बहुत प्रभावी हो सकता है, जैसा कि मुशर्रफ ने खोज किया,क्योंकि निर्वाचित प्रतिनिधियों के रूप में उनके पास एक जनादेश था और इसलिये वजन उठा सकते थे। विपरीत परिस्थितियों में, क्षेत्रीय नेटवर्क और अंतराष्ट्रीय नेटवर्क तक पहुंच बहुत प्रभावी हो सकती है।

पाकिस्तान के प्रमुख समाचार और समसामयिक मामलों के चैनल आज टीवी के कार्यकारी निदेशक, सैयद तलत हुसैन, कहते हैं ''पड़ोस में मोहल्ला समितियों से, तहसील स्तर से जिला, डिवाजनो और प्रांतीय स्तर तक एक देश में जो कि संस्थाओं के निर्माण के लिये प्रसिद्ध नही है, में संगठन की अच्छी खासी उपस्थिति है।'' पीएफयूजे की संगठनात्मक रणनीति की प्रभावकारिता, मुशर्रफ के कार्यकाल के दौरान स्पष्ट थी। वकीलों और पत्रकार सड़कों पर उतर आये, स्थानीय बार परिषद, प्रेस क्लबों, और पत्रकार संघों के माध्यम से जुटाए, जनता के मूड को बनाया जिसमें तानाशाही के लिये व्यापार एक विकल्प के रुप में नहीं रह गया।

पत्रकारों के निकाय हाशिए पर डाल दिये गये पत्रकारों के साथ, विविध लोगों को मुख्य धारा में एक साथ लाने, और जोड़ने सफल रहा। टोबा टेक सिंह, सुक्कर और क्वेटा में, स्थानीय संघों पर विश्वास किया जा सकता था कि ये उबाल को जारी रखेंगे जब कराची और लाहौर प्रेस क्लब बंद हो गये थे। इस कारण से काहट या स्वात के दूरदराज क्षेत्र में किसी पत्रकार की मौत पर ध्यान देने से बच नही सकते। यह एक सामूहिक पहचान की अभिव्यक्ति है कि व्यक्तिगत पत्रकारों के मान्यता प्राप्त हो गयी है।

यहां विरोध के तरीके भिन्न रहे हैं। पीएफयूजे के अध्यक्ष परवेज शौकत ''काले शनिवार, के बाद लगातार विरोध को याद करते हैं जब मुशर्रफ ने 3 नवम्बर 2007 को आपातकाल की घोषणा की थी। वो कहते हैं'' प्रभावी टॉक शो और समाचार कार्यक्रमों पर रोक लगा दी गयी थी, लेकिन हमारे प्रोत्साहन से, तलत हुसैन, फहद हुसैन और दूसरों ने अपने कार्यक्रम रैली के सामने सड़कों पर किये।, ''प्रतिरोध की आवाज के साथ ये कार्यक्रम लोगों के घरों में सीधे लाइव पंहुचाये गये, लोकतांत्रिक भावना को बढ़ाते हुये।'' विरोध रैलियों, सड़कों पर बठना और प्रदर्शन, हाथों पर काली पट्टी लगाकर, पीएफयूजे ने राष्ट्रीय संसद तक मार्च और संसदीय कार्यवाही का बहिष्कार जैसी रणनीति भी अपनायी। यह तरीके इतनी गंभीरता से लिये गये कि अध्यक्ष ने कई मौको पर विपक्ष के नेता को निर्देश दिया कि वह संघ के नेता से बातचीत करके समझौता करें। मीडिया समुदाय का सबसे दिखाई देने वाला और मुखर मंच लाहौर प्रेस क्लब, के अध्यक्ष, सरमद बशीर, कहते हैं ''यंहा तक कि हालांकि हम कुछ गतिविधियों के लिए सरकारी धन स्वीकार करते हैं, हमने विरोध में राजनीतिक नेताओ को आमंत्रित नही किया जो कि जिया उल हक के साथ थे और प्रेस क्लब में मुशर्रफ युग की शपथ ग्रहण घटनाओं में शामिल थे जो कि एक सम्मेलन था।

पीएफयूजे के जन्म से ही प्रेस की स्वतंत्रता और सेवा की सुरक्षा एक रोना रहा है। मजदूरी पुरस्कार और उनके कार्यान्वयन के लिए पैरवी, सेंसरशिप और मीडिया के सह-विकल्प के खिलाफ विरोध प्रदर्शन के साथ ही चला गया। पीएफयूजे को ओर से दबाब में, सरकार ने समाचार पत्रों से 980 मिलियन पाकिस्तानी रुपये के मूल्य के बराबर के विज्ञापन छीन लिये जो कि मजदूरी बोर्ड का लागू नही कर रहे थे और सही मजदूरी नही दे रहे थे। यह एक विकल्प था जिसकी भारतीय समकक्षों ने भी कई अवसर पर आग्रह किया यद्यपि भारत में परिस्थितिया कुछ अलग थीं और एक समान उपाय अपेक्षित प्रभाव नही दे सकते।

संघों में महिलाएं

1970 और 1980 के दशक, पाकिस्तान ने बहुत ही राजनीतिक पत्रकार आंदोलन देखा, जिसमें कुछ ही महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उदाहरण के लिये, जनरल जिया के शासनकाल के विरुद्ध 1978 के आंदोलन के दौरान, लाला रुख को उसके एक साल के पुत्र के साथ जेल हो गयी। दूसरे जैसे शिन फारुख, मेहनाज रहमान और फरीदा हाफिज गतिशील महिला पत्रकार कार्यकर्ता के रूप में नजर आयी। कुछ को पत्रकार निकायों और मीडिया घरानों में नेतृत्व भूमिका भी मिल गयी। इनमें फौजिया शाहिद थीं जो कि पीएफयूजे की महासचिव

बनी, उमारिया अतहर जो की कराची प्रेस क्लब की उपाध्यक्ष बनी और राजिया भाटी जो कि द हेराल्ड की संपादक बनी। दुनिया टी वी की अनीला शाहीन का, 2010 में, पत्रकारों के खैबर संघ की महासचिव के रूप में चुनाव ने महिलाओं के लिए एक मनोबल बढ़ाने वाला काम किया, खासकर के इस रूप में कि खैबर संघ पत्रकारों के लिए सबसे खतरनाक स्थानों में से एक था। हालांकि यह कुछ अपवाद है। आदर्श में महिलाओं का दोनो सदस्य और पदाधिकारी के रुप में बहुत ही कम प्रतिनिधित्व है।

मजहर अब्बास के अनुसार, संघो में महिलाओं की उपस्थिति धीरे धीरे बढ़ती गयी। (पीएफयूजे ने एक सर्वेक्षण में पूरे पाकिस्तान में 300 पूर्णकालिक महिला पत्रकारों को गिना)। पहले, अब्बास के अनुसार, संघो में अधिकतर महिलाएं राजनीतिक पृष्ठभूमि से आयी थीं, जिनका दृष्टिकोण वामपंथी था। आज, टीवी के कारण पत्रकारिता में महिलाएं की संख्या बढ़ गयी है, कम राजनीतिक उन्मुखीकरण वाले युवा पेशेवरों को आकर्षित करने के लिए, एक प्रवृत्ति है कि टीवी तत्काल ग्लैमर और मान्यता दिलाता है। कुछ ही महिला ब्यूरो चीफ या रिपोर्टर हैं, जबकि एंकर, टॉक शो होस्ट या प्रोड्यूसर अधिक हैं। लेकिन जब वे संघो में आती हैं, तब उनको नियमित पत्रकार की तरह नही लिया जाता है।, और इसलिये उन्हे सदस्यता नही दी जाती है। इस प्रकार मीडिया में दिखाई देने वाला उत्साह संघो की सदस्यता में प्रतिबिंबित नही होता है।

इस बात पर सहमित जताते हुये कि पाकिस्तान माडिया के बदलते वातावरण के साथ नही जासका आज टीवी समाचार को निर्देशक सैयद तलत हुसैन कहते है कि संघे अभी भी आंदोलनकारी रुप में हैं और नई परिस्थितियो में अपेक्षित उनकी अपनी नीतियों की पूरी तरह से गहन जांच नही की है। यहां तक कि जब जमीन आवंटन का सवाल आता है जहां सरकार पत्रकारों को सुविधाओं के लिये समर्थन प्रदान करती है, टेलीविजन पत्रकारों को छोड़ दिया जाता है। वह जोड़ते हैं कि महिलाएं सामान्यतया विवादास्पद निकायों से बचती हैं। वो जो अपने केरियर पर केंद्रित रहती हैं संघ में शामिल होने की जरुरत नही देखती हैं क्योंकि वे इसे पेशेवर विकास के अभिन्न अंग के रूप में नहीं देखती। इसके अलावा, संघो को, जो अभी भी पुरुष प्रधान हैं, 'प्रिय' गतिविधियां करनी होती हैं जैसे कि विरोध प्रदर्शन, अड़ियल नियोक्ताओं के झड़प और सड़क प्रदर्शन और महिलाओं के साथ जो की घरेलू काम काजो में फंसी हुई हैं इन गतिविधियों में समय बिताने में हिचकिचाती हैं। अनिच्छा और बढ़ जाती है जब यह माना जाता है कि संघ महिलाओं के लिए विशेष प्रासंगिकता की बातों की चिंता नहीं करते हैं, जैसे कि कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न, या विशेष सुविधाओं की उन्हे आवश्यकता हो सकती है मसलन देर रात की पाली के बाद घर तक के लिये परिवहन की व्यवस्था और अलग वाश-रुम।

कुछ पदाधिकारियों के लिये संघो के कार्यकारी निकायों में लैंगिक समानता की अनुपस्थिति भी चिंता का विषय रही है। अपने कार्यकाल के दौरान, मजहर अब्बास ने पीएफयूजे के संविधान में संशोधन करने का असफल प्रयास किया जो कि कार्यकारी में चार या पांच महिलाएं सुनिश्चित-करता। महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिये कोटा की प्रभावकारिता और सकारात्मक कार्य के बारे में चर्चाए अनिर्णायक रही।

इलेक्ट्रॉनिक मीडियाः फ्रंटलाइन 24 ×77

पत्रकारों, रावलपिंडी इस्लामाबाद संघ (*RIUJ*)के महासचिव जमील मिर्जा, का कहना है इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की तुरंत जरुरत का अर्थ है कि जिन खतरों का वो सामना करते हैं खुद ही तुरंत प्रकट हो जाये।

'कैमरामैन सदैव ही आगे होते हैं और खामियाजा भुगतते हैं,' वो कहते हैं। ''आंतरिक मंत्री, रहमान मलिक, ने पत्रकारों को बुलेट पुरूफ जैकिट देने के लिये छः बार प्रतिबद्धता दर्शायी है लेकिन इससे भी कुछ नही निकला।''

11 सितंबर 2001 के बाद, पाकिस्तान अफगानिस्तान क्षेत्र वैश्विक ध्यान में सबसे आगे रहा है। परिणामस्वरुप समाचार उत्पादन एक उच्च प्रोफ़ाइल गतिविधि बन गया है विशेषरुप से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में। अंतरराष्ट्रीय प्रकाशनों के लिए रिपोर्टिंग में भी वृद्धि हुई है। अंग्रेजी मीडिया के लिए यह वेतन और काम करने की स्थिति में कुछ सुधार का मतलब है लेकिन जो लोग उर्दू मीडिया में हैं विशेषरुप से स्ट्रिंगर और दूरदराज के क्षेत्रों के संवाददाता, अंतरराष्ट्रीय ध्यान का कोई तात्कालिक लाभ नही हुआ है। इसके बजाय, मुशर्रफ के तहत, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को नियंत्रित करने का प्रयास, नई ऊंचाइयों पर पहुंच गया।

16 मई, 2005 को, राष्ट्रीय असेंबली पाकिस्तान ने इलेक्ट्रॉनिक मीडिया नियामक प्राधिकरण संशोधन विधेयक (2004) पारित किया। पीईएमआरए कानून के तहत बनाई गयी ऑथोरिटी, क्लॉज 27 के तहत चैनलों पर राष्ट्रीय हित, सुरक्षा, पाकिस्तान की विचारधारा और अश्लीलता की रोकथाम की रक्षा के नाम पर प्रतिबंध लगा सकती है। ये धारणाएं पूरी तरह से व्यक्तिपरक है। पीईएमआरए ने कानून के उल्लंघन को संज्ञेय अपराध और बढ़ते रहने वाला अपराध बना दिया, जिसके लिये तीन साल की कैद और दस मिलियन पाकिस्तानी रुपये तक का जुर्माना हो सकता है। पीईएमआरए, जो कि 2007 में फिर से संशोधित किया गया, को टेलिवीजन चैनलों को प्रतिबंधित और उपकरण को जब्त करने के लिये प्रयुक्त किया गया। मीडिया निकायों ने इस कठोर तानाशाही कानून के खिलाफ मुशरर्फ युग के दौरान,अपनी आवाज उठायी। 2008 में लोकतंत्र की बहाली के बाद, कानून को दबा दिया गया। यद्यपि संघ ने अपना रुख कायम रखा कि इसके अंतर्गत बनायी गयी ऑथोरिटि को भंग कर दिया जाना चाहिये और इसके स्थान पर सभी मीडिया हितधारकों को शामिल करते हुये एक आत्म-नियामक निकाय बनाया जाय। इस कदम के रुप में, पीएफयूजे ने, जनहित में पत्रकारिता के मूलभूत सिद्धांतो के सांकेतिक शब्दों को बदलने के प्रयास में अगस्त 2008 में 26 बिन्दुओ की आचार संहिता का मसौदा तैयार किया। ड्राफ्ट पर चर्चा और बहस चल रही है। इसी प्रकार, आत्म नियामक के तंत्र के रुप में एक मीडिया शिकायत आयोग भी कई सालों से चर्चा में है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया सेक्टर में श्रम कानून लागू नही होता है। यदि वेतन ठीक हैं, भुगतान केवल दो या तीन महिनो मे किया जाता है। अधिकांश चैनलो ने 24 घंटो के चैनल खोल दिये हैं, बिना विश्लेषण किये परिणामस्वरुप कई चैनल बहुत जल्द बंद हो गये। मजहर अब्बास के अनुसार, पिछले दो तीन सालो में 400 से 500 पत्रकारों ने अपनी नौकरिया गंवाई है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में कोई कानून नियोक्ताओ पर

लागू नही होने के कारण, अदालत में भी कोई सुनवाई नही है।

वास्तव में, संघो के लिये बहुत तेजी से बदतला मीडिया बहुत महत्वपूर्ण है। कार्य संस्कृति बदल चुकी है, और मालिकाना हक और कार्यस्थल की समीकरणें भी बदल चुकी हैं। निजिकरण और एयर वेब्ज को खोलने से, दोनो इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और इंटरनेट, नयी चुनौतियां लेकर आये हैं। संघो के लिये जो कि प्रेस की पूर्ण स्वतंत्रता के लिये लड़ाई और लोगों के धार्मिक विश्वास और रिवाजों के सम्मान के बीच संतुलन बनाना कठिन रहा है और यंहा तक कि विवादास्पद भी जैसे कि कथितरुप से इस्लाम पर असम्मानिय टिप्पणियों के बाद अप्रैल 2010 में सामाजिक नेटवर्किंग साइट फेसबुक पर प्रतिबंध का समर्थन।

प्रेस की स्वतंत्रता और नौकरी की सुरक्षा

पाकिस्तान में पत्रकार, देश में सबसे कम वेतन पाने वाले पेशेवर हैं। कुछ को छोड़कर, मुख्यत: इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में, शेष अपनी जिंदगी को दांव पर लगाकर बेहद थोड़े के लिये काम करते हैं। पीएफयूजे और एपीएनईसी ने लगातार पत्रकारों और सभी मीडिया कर्मियो के लिये उचित वेतन और नौकरी की सुरक्षा के लिये आवाज उठाई है।

8 अक्टूबर 2001 को, सातंवा वेतन बोर्ड बैठाया गया पत्रकारों के लिये कानूनी रुप से वेतन के स्केल और कार्यस्थल का स्थितियों का पैमाना तय करने के लिये, जो कि अक्टूबर 2000 से लागू होना था। लगभग 9 साल के बाद, यह प्रस्ताव अभी भी लागू होने हैं। आठवें वेतन बोर्ड को भी पूरा होने के बाद, पाकिस्तान के 85 फीसदी समाचार पत्रो को सातवां वेतन बोर्ड लागू करना बाकी है। अधिकतर पत्रकार और मीडिया कर्मी गैर–कानूनी समझौतों या नियुक्ति के आधिकारिक पत्रों के बिना काम कर रहे हैं। कई को रोजाना मजदूरी मिलती है। नीति पर गतिरोध, कानूनी और लागू करने के स्तर बिन्दुओं को गंभीरता से पुन: सोचनी की जरुरत है और शायद अन्य उपाय अपनाने की जरुरत है। मुशर्रफ के कार्यकाल में निजि मीडिया में बढ़ोतरी हुई लेकिन अब यही नौकरी कम कर रहा है। सैकड़ो हजारों पत्रकार अपनी नौकरी से हाथ धो बैठे है।

सेंसरशिप के किसी भी रुप का प्रतिरोध करने के लिये, या तो राज्य से या फिर आतंकवादी समूह से, मीडिया मालिको को कामकाजी पत्रकारों के समर्थन की जरुरत होती है। विरोध के दौरान, कामकाजी पत्रकार सड़को पर उतर आते हैं, पूर्णरुप से जागरुक, कि समाचार पत्र को बंद करना उनकी नौकरी को खतरे में डाल देता है। संकट के समय में, हाल ही में मुशर्रफ के अंतर्गत संघर्ष के दौरान, मीडिया मालिक पत्रकारों के पास पहुंचे और एक संयुक्त फ्रंट का निर्माण किया। लेकिन एक बार विरोध समाप्त होने पर, एकजुटता खत्म हो जाती है और विरोधाभास सामने आने लगते हैं। मजहर अब्बास कहते हैं, पीएफयूजे की सामान्य निकाय ने एक गंभीर सवाल उठाया: वे कहते हैं कि प्रेस स्वतंत्रता के लिये अभियान चलाकर हमने क्या पाया? प्रेस की स्वतंत्रता मालिकों के लिये हैं, न कि कामकाजी पत्रकारों के लिये। सरकार के द्वारा दमन के खिलाफ एक मत बनाने के लिये सामान्य निकाय को समझाना संघ के लिये कठिन स्थिति है।स जबकि मालिक पीएफयूजे को तभी पहचानते हैं जब उनके संकीर्ण हितों की बात आती हैं। यह शास्त्र कितना स्पष्ट है कि समाचार पत्र पीएफयूजे की रैलियों और वेतन और कार्य परिस्थितियों पर कार्यों को कवरेज नही देते हैं।

नये ट्रेंड के साथ कि सभी सेक्टरों में नियमित रोजगार धीरे धीरे खत्म हो रहा है, जिसमें पत्रकारिता भी शामिल है, कोंट्रेक्ट तंत्र जॉब सुरक्षा और संघ के विकास को बुरी तरह से प्रभावित कर रहा है, क्योंकि कम–अवधि पर कोट्रेक्ट पर लगे हुए पत्रकार संघ में शामिल होने में हिचकिचाते हैं। वास्तव में, पत्रकार आज मानता है कि उनके विवाद सरकार से नही है बल्कि मीडिया घरानो से हैं। यंहा तक की विशेष सरकारें जैसे कि गिलानी के शासन में मौजूदा सरकार, पत्रकार संघो के द्वारा मांगों के प्रति उत्तरदायी होती है, मालिक घंटा बजाने के इंच्छुक नही हैं। चाहे यह बीमा कवर प्रदान करना हो या संयुक्त नैतिक समिति की बैठक हो, मालिक कामकाजी पत्रकारों के साथ समकक्ष स्तर पर काम करने के लिये तैयार नही होते हैं।

इस प्रकार, जबकि पाकिस्तान दिखाई पड़ने वाली एकजुटता देखी और मीडिया कर्मियों और पत्रकार निकायों, समाचार पत्र मालिकों और संपादकों का संगठन देखा, लेकिन यह एकजुटता कुछ ही समय के लिये है केवल जब तानाशाही शासन से लड़ना हो या फिर सेंसरशिप से लड़ना हो। सूचना के लिये स्वतंत्रता के लिये संयुक्त मुद्दों वाले अभियानों से सबक सीखा इसलिये प्रेस स्वतंत्रता के लिये अभियान और पत्रकारों के काम की स्थितियों के लिये अभियान के बीच जोड़ को मजबूत करने के लिये यह कुछ मार्ग दे सकता है।

श्रीलंका

युध के बाद के चेलेंज और मीडिया

जुलाई २००६ में कोलंबों के संपा लकमाल दे सिलवा के हत्या के विरोध में हुए प्रदर्शन को लीड करने वाले पत्रकार पोद्दला जयंथा को २००६ में जान से मारने की धमकियों का सामना करना पड़ा।

श्रीलंका के 26 साल पुराने गृह युद्ध मई 2009 में तमिल ईलम लिबरेशन टाइगर्स (लिट्टे) की अलगाववादी विद्रोह पर अंतिम विजय को सरकार के औपचारिक रूप से घोषणा के साथ समाप्त हो गया उसके बाद के दिनों में, राजनीतिक सुधारों की शुरुआत के साथ उम्मीदे बढ़ने लगीं। जिससे सीमा पर सुलह की प्रक्रिया, शांती बहाली और सरकार में पारदर्शिता को बढ़ावा दिया जा सके। मीडिया, जो इस अवधि के दौरान निंदा और आक्रमण का पात्र बना औस साथ ही इसे दमित किया गया था। उसे उम्मीद थी की विरोध के माहौल और अधिक स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति में शांति के नए युग की शुरुआत होगी। हालांकि ये दूरदर्शिता जनवरी 2010 में हुए विभाजक राष्ट्रपति चुनाव अभियान और अप्रैल में हुए श्रीलंका लोकसभा के आम चुनाव में नहीं रह सकी। आगामी अवधि ने मीडिया कर्मचारियों और मीडिया संस्थानों पर नए सिरे से हमलों और सरकारी नियंत्रण के प्रयासों पर जोर के साथ उनकी शुरुआती उम्मीदों पर आघात किया। इनमें से सबसे उल्लेखनीय प्रेस परिषद को पुनर्जीवित करने का प्रयास और मीडिया विकास प्राधिकरण की स्थापना, जिससे वे मीडिया संस्थानों की नैतिकता में सुधार के लिए स्थानीय मीडिया की कथित मदद कर सकें[१]। प्रसारण प्राधिकरण की स्थापना करने के लिए भी योजनाएं बनाई गई जो 'टीवी और रेडियो स्टेशनों की गतिविधियों पर नजर रखें, मीडिया दिशानिर्देशों का निर्गमन और इस क्षेत्र में लाइसेंस देने की प्रक्रिया को विनियमित करें[२]'। सरकार ने पहले ही नए निजी टेलीविजन प्रसारण स्टेशनों, इंटरनेट सेवा प्रदाताओं और टेलीफोन नेटवर्क को लाइसेंस देने के लिए नियमों की घोषणा की है. ये इन विवादास्पद नियमों का एक छोटा संस्करण हैं जिसे 2009 के अंत में पेश करने की मांग की गई, जिससे खबर प्रसारण के साथ ही इंटरनेट पर प्रसारित होनेवाली अन्य सामग्री पर प्रतिबंध लगाने लगे।

मीडिया की आजादी और राजनीतिक सुधार की उम्मीदों पर दूसरा आघात तब लगा जब 8 सितंबर 2010 को संसदीय चुनाव हुए और संविधान में 18 वें विवादास्पत अनुमोदन को मंजूरी मिली। मीडिया संगठनों, नागरिक समाज समूह, ट्रेड यूनियन और विपक्षी राजनीतिक दलों द्वारा व्यापक विरोध के बीच एक आपातकालीन विधेयक के रूप में लिया गया संशोधन, जोकि किसी भी शक्तिशाली कार्यकारी अध्यक्ष पद धारण व्यक्ति पर दो कार्यकाल की सीमा को हटाने में किया गया,सभी स्वायत्त सार्वजनिक संस्थाओं को 17 वीं संशोधन के तहत राष्ट्रपति के सीधे नियंत्रण में लाता है।

यह राष्ट्रपति को व्यापक अधिकार देता है कि वो आयोगों की नियुक्त कर सके जो चुनाव,सार्वजनिक सेवाओं, पुलिस, मानवाधिकार, सार्वजनिक जवाबदेही और न्यायिक सेवाओं की निगरानी करते है। वास्तव में राष्ट्रपति के पास शीर्ष कानून अधिकारी और राष्ट्रीय ऑडिट एजेंसी का हेड नियुक्त करने की बेरोक शक्ति होती है। वह अपनी शक्ति के माध्यम से संसद के लिए मुख्य सचिव की नियुक्ति कर सकता है जिसके पास विधायिका के संचालन पर आदेश देने की अप्रत्यक्ष शक्ति है। ऐसा अनुभव किया गया कि ये प्रावधान लोकतंत्र और अच्छे शासन की जड़े काट रहे है। जिस तरीके से संशोधन आपातकालीन विधेयक के रूप में संसद में आगे बढ़ा उससे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे ये लोगों की बुनियादी स्वतंत्रताओं का उल्लंघन कर रहा है। तथापि, स्वतंत्र मीडिया के लिए यह निहित शक्ति विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जोकि तीन सदस्यीय चुनाव आयोग के साथ निहित है जो चुनाव के दौरान राज्य और गैर- सरकारी स्वामीत्व वाली मीडिया दोनों को दिशानिर्देश जारी करती है।

17 संशोधन के तहत चुनाव आयोग के पास राज्य की मीडिया को दिशानिर्देश जारी करने का अधिकार है, लेकिन 18 वें संशोधन में इस अधिकार को गैर-सरकारी मीडिया तक बढ़ा दिया गया है-आयोग की नियुक्ति का अधिकार के साथ संयुक्त जोकि राष्ट्रपति के पास है- ये चुनाव के समय में किसी भी तरह के विरोध की सूचना के बारे में लिखना हो सकता है या फिर विरोधी पार्टी की बात को किसी भी रूप में लिखना।

पदाधिकारी सरकार द्वारा राज्य मीडिया के दुरुपयोग की मौजूदा संस्कृति और राज्य नियंत्रित मीडिया को लोकसेवा मीडिया में परिवर्तित करने के सुधार की लंबे समय की आवश्कता के संदर्भ में ये मुद्दा प्रासंगिक बन जाता है।

लोक सेवा मीडिया पर कोलंबो में हुए एक एशिया-व्यापक सम्मेलन जिसकी मेजबानी पत्रकारों की अन्तर्राष्ट्रीय फेडरेशन (ifj) ने अपने श्रीलंकाई भागीदारों के साथ 2003 में की, अनेक सिद्धांत के साथ राज्य-नियंत्रित मीडिया में सुधार के लिए जरूरी तत्काल कार्रवाई को रेखांकित

१ मीडिया डवलपमेंट अथार्टी : श्रीलंका में मीडिया पर कंट्रोल का दूसरा नाम?- http://www.groundviews.org/2010/07/28/media-development-authority-another-name-for-media-control-in-sri-lanka/

२ देखें श्रीलंका द्वारा स्थापित ब्राडकास्टींग अथार्टी- http://blogs.rnw.nl/medianetwork/sri-lanka-to-set-up-launch-broadcasting-authority

किया। नैतिक, जवाबदेही और आर्थिक रूप से पारदर्शी संरचनाओं के माध्यम से सार्वजनिक सेवा मीडिया पर हर तरह का प्रत्यक्ष राजनीतिक नियंत्रण हटाने और उसके प्रशासन के लिए अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप ढांचा बनाने का काम भी इसमें शामिल था। ये ऐसे समय में था जब श्रीलंका औपचारिक रूप से घोषित युद्धवीराम से गुजर रहा था। इस बात की काफी उम्मीदें थी कि ये वार्ताएं ग्रहीय राजनीतिक हल निकालेंगी।

नाजुक रिपोर्टिंग के लिए स्थान का प्रतिवाद

चूंकि युद्ध की घटनाओं के अंत तक एक अत्यंत धरुवीकरण राजनीतिक परिवेश की पृष्ठभूमि में काफी उन्नति हो चुकी थी। उत्तर और पूर्व में युद्ध के दौरान और युद्ध के बाद हुए विकास पर महत्वपूर्ण बातों की छानबीन करने की इजाजत पर अस्वीकृति लगातार जारी थी। इसमें आंतरिक रूप से विस्थापित व्यक्तियों (IDPs) की दुर्दशा और फिर से उनके मेल-मिलाप की प्रक्रिया भी शामिल है।

मोमबत्ती मार्च, जनवरी २००६ में कोलंबो में मारे गए पत्रकार लसांथा विक्रमातुंगा के लिए।

एक सख्त और प्रतिकूल वातावरण में, देश के सभी भागों के मीडिया पेशेवरों ने स्वयं को शारीरिक हानि से बचाने के लिए स्व-निरीक्षण और दूसरी रणनीति अपनायी। और स्व-संरक्षण के इन नियमों का जिसने पालन नहीं किया,वे खतरे में आ गए। युद्ध के वर्षों के दौरान हिंसा,धमकी देना और पत्रकारों की हत्या आम हो गई थी और अंतिम चरण में माहौल पूरी तरह बदतर हो गया था। इस अवधि के दौरान खासकर तमिल भाषा मीडिया लगातार दबाव के अधीन था। जाफना से पब्लिश होने वाले 'उथायन दैनिक' और कोलंबो में उसके सहयोगी समाचारपत्र 'सुदार ओली' लगातार निशाने पर थे। सरकार के इस संदेश के साथ कि मीडिया का एक स्पष्ट दोहरा चयन है-इनकी युद्ध नीति का समर्थन नहीं करना आतंकवाद का समर्थन करना समझा जाएगा-पत्रकारों ने आत्म-सेंसरशिप या चुपचाप युद्ध प्रयास का समर्थन कर मौन रहना उचित समझा। युद्ध के स्वतंत्र कवरेज पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। युद्ध की कवरेज के लिए केवल दो राज्य नियंत्रित टीवी स्टेशनों और एक निजी पर-युद्ध स्टेशन के मीडिया कर्मियों को सरकार की अनुमति थी। सरकार और लिट्टे के हथियारबंद सैनिक युद्ध की खबरें और चित्रण लगातार प्रचारित करते रहते थे। युद्ध में मारे गए लोगों का स्वतंत्र सत्यापन संभव नहीं था।

आईडीपी (आंतरिक विस्थापित लोग) पर चुप्पी

दमनकारी संस्कृति और आत्म सेंसरशिप के माहौल के चलते मानवीय मुद्दों का कवरेज चुनौतीपूर्ण था। एक दुर्घटना तो उचित थी और उत्तर दिशा के कैदी शिविरों में 300000 आंतरिक विस्थापित लोगों की स्थिति पर विषयपरक पत्रकारिता मुश्किल हो रही थी। वो जो कवरेज पारित करते थे, वो उनके उस दौरे से आती थी जो बदनाम माणिक खेतों से शुरू होती थी। राज्य मीडिया के पत्रकार सरकारी अधिकारी और विदेशी उच्चाधिकारियों का उनकी टोली का हिस्सा बनकर उनका साथ देते थे।

सामान्य रूप से आईडीपी के मुद्दे पर दिया जाने वाला ध्यान सांतत्यक के साथ बढ़ता गया जो तमिल प्रेस से सबसे अधिक, अंग्रेजी प्रेस से थोड़ा कम और सिंहाला प्रेस से सबसे कम जुड़ा हुआ था। तमिल प्रेस में न्यू उथायन ग्रुप से जुड़े उथायन और सुडार ओली जोकि क्रमश जाफना और कोलंबो से प्रकाशित होते हैं,आईडीपी की स्थिति पर सबसे मजबूत रिपोर्टिंग करने के लिए जाने गए, जिसमें प्राय शिविरों में ही अपने स्रोतों का प्रयोग संवाददाताओं के रूप में पहचान को संरक्षित करते हुए किया।

संडे टाइम्स के 6 सितंबर 2009 के संस्करण में प्रकाशित दो उल्लेखनीय रिपोर्ट में उजागर किया गया कि आईडीपी के कैंप उन लोक सेवकों द्वारा गुटबाजी और मानव देह व्यापार के लिए एक उपजाऊ अड्डा बन गए हैं। जो लोगों की तंगहाली का आर्थिक लाभ उठाने में थोड़ा नैतिक संकोच करते है। फिर भी वे पत्रकार जो जमीनी-ब्रेकिंग रिपोर्ट में शामिल थे, ने मान लिया कि इसका सामाजिक प्रभाव बहुत कम था[३]। आंशक के रूप से इसलिए क्योंकि सिंहल भाषा के प्रेस उदासीन थे।

कहने के लिए, ववुनिया और मन्नार में स्थापित समाचारपत्र के दो विशेष संवाददाताओं को श्रेय नहीं दिया गया जबकि उन्होंने पत्रकारिता में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। नागरिक पत्रकारिता के वेबसाइट Groundviews (www.groundviews.org) ने आईडीपी कैंप के अंदर की स्थित पर कुछ सबसे चर्चित प्रारंभिक रिपोर्टिंग की। जिसने अगस्त और अक्टूबर 2009 में हुई भारी वर्षा के चलते हुई गंदगी और दुर्गति की बढ़ती परिस्तिति पर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय विचारों पर ध्यान केंद्रित कराया। शिविरों के भीतर स्थिति में मुख्यधारी मीडिया की चिंता पर टिप्पणी, वेबसाइट मीडिया के रिपोर्टिंग के साथ जुड़ गई[४]।

---

३ दो रिपोर्ट, जिनका नाम था स्कैंडलस प्लंडर ऑफ ए बाटरड पीपुल्स'' औ द हाई प्राइस ऑफ फ्रिडम'' जो द संडे टाइम्स की टीम द्वारा खोजा और किया गया था। वो मौजूद हैं- http://www.sundaytimes.lk/090906/News/nws_02.html and http://www.sundaytimes.lk/090906/News/nws_24.html

४ अगस्त की रिपोर्ट '' द शेम ऑफ मेनिक फॉर्म'' ekWtwn gS&http://www.groundviews.org/2009/08/23/the-shame-of-menik-farm/ and : एंड अक्टूबर की रिपोर्ट- http://www.groundviews.org/2009/10/13/breaking-news-flooding-and-unrest-again-at-menik-farm/.

आईडीपी मुद्दे पर रिपोर्टिंग स्पष्ट रूप से एक चुप्पी का क्षेत्र था। नवंबर में शिविरों के खुलने और अनेक विस्थापितों का अपने घर की वापसी के साथ मुख्यधारी मीडिया की उदासीनता बनी रही। जैसे-जैसे शांति बढ़ी, (Groundviews) वेबसाइट ने एक दूसरी रिपोर्ट की कुछ अलग-अलग लोगों पर जो अपने जीवन के पुन निर्माण की कठिन प्रक्रिया शुरु करने आईडीपी शिविरों से छूटकर अपने गांव वापस लौटे थे। युद्ध के शिकार नागरिकों के मुद्दे पर मुख्यधारी मीडिया की चुप्पी का विरोध करते हुए करते हुए नागरिक पत्रकारिता वेबसाइट ने पुन रिपोर्ट किया- 'उन सभी परिवारों के लिए जिनके काबिल पुरुष या महिला जो युद्ध के दौरान(या उससे पहले) मारे गए है, या बलपूर्वक रोक लिए गए हैं, उन विस्थापित लोगों के लिए वापसी इतनी सुखद नहीं है जितना कि कोई देखता या आमतौर पर विश्वास करता है। हमने ऐसे परिवार भी देखे जो घटकर सिर्फ बच्चे, महिला या वृद्ध तक ही सीमित रह गए है। ये आश्चर्य की बात है कि बिना किसी आधारभूत सुविधाओं (पनाह, अस्पताल, ट्रांसपोर्ट, स्कूल, पीने का पानी, बिजली और जीवन निर्वाह की क्रियाओं के लिए रास्ते) और आजादी के आंदोलन के लिए मूल अधिकार के इन आईडीपी की घर वापसी का अर्थ क्या है'[५]। नवंबर 2009 तक सरकार ये दावा कर रही थी कि अधिकांश विस्थापित कैद से छूट गए हैं और उन्हें घर वापसी की अनुमति दे दी गई है। कोलंबो से जाफना तक का रास्ता भी असैनिक यातायात के लिए खोल दिया गया है। हालांकि काफी संख्या में सुरक्षा पोस्ट वहां पर थे। लेकिन फिर भी जाफना और कोलंबो के बीच संभावित यात्रियों को पूर्व अनुमति लेने की जरूरत थी। तथापि उत्तरी प्रांत में जीवन सामान्य से काफी दूर था।

शांति और मेल-मिलाप के लिए चुनौतियां

लिट्टे के साथ युद्ध समाप्ति की घोषणा के 8 महीने बाद, 26 जनवरी 2010 को श्रीलंका में शक्तिशाली कार्यकारी राष्ट्रपतित्व के लिए राष्ट्रव्यापी चुनाव हुए। इसका परिणाम था पदधारी महिंदा राजपदसे असंतुलित जीत, अपने प्रमुख प्रतिद्वंदी सरथ फोनसेका पर जोकि युद्ध की अंतिम स्थिति में आर्मी कमांडर रह चुके थे। जब तक अपने दायरे के लोगों और अध्यक्ष के साथ तालमेल बिगड़े, तब तक उन्हें मिलिट्री जीत के सह-निर्माता के रूप में दूर तक ख्याति मिल चुकी थी। चुनाव के परिणाम आने के कुछ दिनों बाद ही फोन्सेका को विवादास्पत परिस्थितियों के अधीन और अनिर्दिष्ट अपराधों के लिए हिरासत में ले लिया गया था। अबतक उन्हें सेना में रहते हुए राजनीतिक भ्रष्टाचार और हथियारों की खरीद-फरोख्त के आरोप में दो बार कोर्ट मार्शल का सामना किया। फोन्सेका ने दोनों आरोप को नकार दिया, लेकिन पहला कोर्ट मार्शल अगस्त 2010 में किया गया जब कोर्ट में अवकाश चल रहे थे। उस दौरान उपस्थित डिफेंस वकीलों ने उन्हें सेना में रहते हुए राजनीति में शामिल होने का दोषी पाया और उनका औदा, उनके मेडल और उनकी पेंशन छीन लेने का आदेश दिया। ये उस व्यक्ति के करियर का खराब अंत था जो 2009 में लिट्टे के विरूद्ध जीत हासिल करने के बाद चार-सितारा मिलिट्री रैंकिग हासिल करने वाला पहला शख्स था।

हालांकि चुनाव निर्णायक थे, मतदान के व्यवहार में कुछ महत्वपूर्ण स्थानीय परिवर्तन हुए। उत्तरी और पूर्वी प्रांतों के अधिकांश जिलों में फोन्सेका की निर्णायक जीत हुई। जिसने 1990 के मध्य तक संघर्ष का सबसे बुरा दौर देखा था। उसकी कोलंबो में भी समृद्ध धार थी। वोट और बाद के कार्यक्रमों का स्पष्ट धरुवीकरण, जोकि सुलह की भावना की उम्मीद के बजाय बढ़ते विरोध को दर्शाता है, चिंता का विषय रहा है। हाल ही में एक प्रमुख मीडिया टिप्पणीकर्ता चिंतित व्यकत विवाद की एक नई भावना द्वीप-राष्ट्र की प्रबल सिंहला बहुमत की राजनीतिक मुख्यधारा में बढ़ रही है[६]। एक मीडिया के परिपेक्ष्य में उत्तर में मतदाता भी चिंता का कारण है। हालांकि उत्तर में फोन्सेका की निर्णायक जीत हुई थी, केवल 26 प्रतिशत मतदाताओं ने ही जाफना जिले में वोट डाले थे। दूसरे उत्तरी जिले वानी में ये आंकड़ा थोड़ा बेहतर था। लेकिन 40 प्रतिशत तक जोकि राष्ट्रीय औसत 74.5 प्रतिशत से कम था। चूंकि फोन्सेका के कल्पित रिहाई के चलते, चुनाव के दिन तक जाफना और वानी शिविरों में बचे पंजीकृत मतदाताओं की संख्या अपेक्षाकृत कम थी क्रमश 15,602 और 29,940 लेकिन यहां चुनावी प्रतिशत पुन शालीन था 65.04 प्रतिशत और 51.42 प्रतिशत। इन जिलों में मतदाताओं की कम भागीदारी ये सवाल खड़ा करती है कि कैसे श्रीलंकाई मीडिया ने उस तमिल जनसंख्या की रूचि और राजनीतिक आकांक्षाओ के जोड़ को कितनी अच्छी तरह नियंत्रित किया होगा। जिस पर सिविल युद्ध का सबसे बुरा प्रहार हुआ है। उसने ये चिंताएं उठाईं कि मतदान और चुनाव अभियान के माध्यम से उनकी आवाजें नहीं सुनी गई और उनके वैध हितों ने उनका ध्यान आकर्षित नहीं किया जोकि उनका देय है।

चुनावी अवधि ने स्वतंत्र मीडिया का नया दमन और राज्य मीडिया का दुरुपयोग भी देखा था। राष्ट्रपति चुनाव के तुरंत बाद में राज्य संचालित प्रसारणकर्ता के कई पत्रकार और दूसरे स्टाफ अपने पद से हटा दिए गए या उन्हें गंभीर अनुशासनिक कार्रवाई के नोटिस दिए गए।

उनका कथित अपराध था चुनावी अभियान के जरिए जोर दिया कि राज्य मीडिया चुनाव आयुक्त की उचित मानदंडों की शर्तों का पालन करे। वे सभी वेबसाइट जो फोन्सेका की उम्मीदवारी के समर्थक थे, बंद कर दिए गए और श्रीलंका में वेब उपभोक्ताओं के लिए उपलब्ध नहीं थे। और न्यायिक आदेश के अधीन दोनों कार्रवाई को उलटने से पहले एक साप्ताहिक समाचारपत्र का संपादक लंका में पकड़ा गया और उसका दफ्तर सील कर दिया गया।

एक ऐसा समाचार वेबसाइट जोकि फोन्सेका की उम्मीदवारी का कट्टर समर्थक था, की जर्नलिस्ट प्रगीथ एक्नेलिगोडा, 24 जनवरी की रात को काम से घर लौटते समय लापता हो गया। उसका आज तक पता नहीं चल पाया है। मानवाधिकार उच्चायुक्त के दफ्तर की सालाना रिपोर्ट 6 मार्च 2010 को संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद को पेश करते समय उच्चायुक्त नवनीथम पिल्ले ने श्रीलंका की स्थिति का इन शब्दों में वर्णन किया 'पत्रकारों, मानव अधिकार रक्षकों और सरकार के अन्य

५ युद्ध के १८० दिन बाद, आईडीपी का पापस आनाः एन आई विटनेस अकॉउंट'' मौजूद है- http://www.groundviews.org/2009/11/18/180-days-after-end-of-war-the-much-anticipated-return-of-idps-an-eyewitness-account/#more-2026

६ देखें जाने माने राजनैतिक वैज्ञानिक दयान जयातिलके के कमेंट, शरथ फॉन्सेनका अफेयरः पॉलिटिकल कैनिबलिजम मस्ट सीज इन श्रीलंका, १५ फरवरी २०१० यहां देखें-http://www.groundviews.org/2010/02/15/sarath-fonseka-affair-political-cannibalism-must-cease-in-sri-lanka/

तिससैनायगम की अपराधसिद्धि

31 अगस्त 2009 को कोलम्बो की उच्च अदालत ने सन्डे टाइम्स के जाने माने स्तम्भकार और प्रिंट एवं ऑनलाइन पत्रकार जे एस तिससैनायगम को आतंकवाद के आरोपों के तहत 20 साल के सश्रम कारावास की सजा सुनायी। 25 अगस्त 2008 को प्रिवेंशन ऑफ़ टेर्रीरिस्म एक्ट (पीटीए) के अंतर्गत तिससैनायगम उनके प्रकाशक वी जसिकरण और उनके सहयोगी वी वालरमाथी के खिलाफ शिकायत दर्ज कराई गई थी। इसके बाद मार्च से तीनों को पांच महीने से ऊपर बिना आरोपों को दर्ज किये हुए हिरासत में रखा गया, जबकि श्रीलंका में आपातकाल अधिनियम में भी इतने वक्त तक बिना आरोप दर्ज किये हिरासत में नहीं रखा जा सकता। तिससैनायगम के मामले को बाकी दोनों के मामले से अलग से सुनवाई हुई, जिसका कारण अभी तक स्पष्ट नहीं है।

2006 में उनके लिखे दो स्तंभों के अलावा एक स्वीकारोक्ति पर उनके हस्ताक्षर के आधार पर मुकदमा चला। जज ने इस सम्भावना पर विचार ही नहीं किया कि महज दो पुलिस वालों के सत्यापन के आधार पर की गई स्वीकारोक्ति दबाव में की गई हो सकती है। अदालत ने बचाव पक्ष की इस दलील को खारिज कर दिया कि स्तम्भ समुदायों के बीच शत्रुता या दुराव नहीं पैदा करते है। कई मशहूर हस्तियों और कानून के जानकारों की इस गवाही कि स्तम्भ संविधान द्वारा प्रदत्त अभिव्यक्ति के अधिकार का उल्लंघन नहीं करते हैं, को खारिज कर दिया गया।

जनवरी 2010 में तिससैनायगम को जमानत दे दी गई इसके बाद 3 मई को विश्व प्रेस स्वतंत्रता दिवस पर श्रीलंका के विदेश मंत्री के इस आश्वासन के बाद कि उन्हें राष्ट्पति द्वारा माफी दे दी जायेगी, वे जून के आखीर में श्रीलंका से बाहर चले गए। हालाकि उनकी रिहाई की शर्तों का खुलासा नहीं हुआ। 13 अक्टूबर 2009 को पीटीए के तहत चल रही सुनवाई के दौरान जसिकरण और वालरमाथी के सामने शर्त रखी गई कि अगर उच्चतम न्यायालय के समक्ष दायर अपनी याचिका जिसमे मूलभूत अधिकारों के उल्लंघन की बात कही गई है, को अगर वे वापस ले लेते हैं तो उन्हें रिहा किया जा सकता है। इन घटनाओं को देख कर यह लगता है की मीडिया का स्वतंत्रता और स्वापनता को बनाए रखना कठिन काम है।

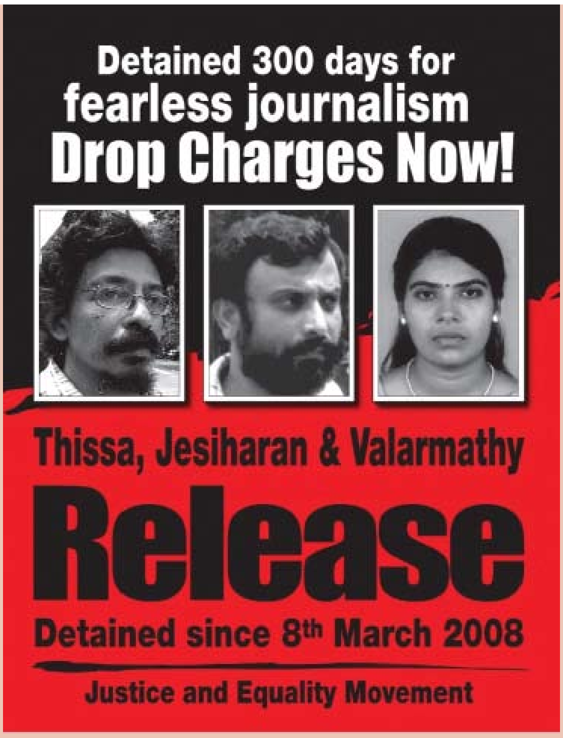

फ्री मीडिया आंदोलन के द्वारा आतंकवाद के आरोप में गिरफ्तार पत्रकार तिसनयागम, जसीकरन और वल्लारमर्थी के गिरफ्तारी के दिन सौ दिन बनाए गए पोस्टर।

आलोचकों के व्यवहार से श्रीलंका में शांति और समन्वय के अवसर लगातार बिगड़ रहे थे। मैं इस बात के पक्ष में हूं कि युद्ध के दौरान सभी पक्षों द्वारा किए गए भारी अतिक्रमण का पूरा हिसाब श्रीलंका को हाथ में लेना चाहिए। और ये भी कि इस संबंध में अंतर्राष्ट्रीय समुदाय सहायक हो सकती है।

इस संदर्भ में ये दिलचस्प बात है कि 2006 में मानवाधिकार आयोग के लिए निर्वाचन की बोली लगाते समय सरकार ने वचन दिया कि देश में प्रेस की स्वतंत्रता के अतिक्रमण की जांच के लिए अभिव्यक्ति के अधिकार पर विशेष संबंधी को न्योता देगी। अगस्त 2009 में विशेष संबंधियों के कार्यालय से श्रीलंका का दौरा करने के लिए अनुरोध किया गया। अब तक सरकार ने इस अनुरोध का उत्तर नहीं दिया है।

बढ़ी-चढ़ी शत्रुता ने निगला मीडिया स्वाधीनता आंदोलन

1980 के अंतिम अंधेरे वर्षों के बाद, जोकि उत्तर और पूर्व में हुए लिट्टे और भारतीय सेना, जोकि शांति दूत बनकर पहुंची थी, के बीच हुए युद्ध के गवाह बने-और जनता विमुक्ति परामुना द्वारा शुरू किए गए विद्रोह पर क्रूर शिकंजा, जोकि दक्षिण में राष्ट्रवादी प्रवृतियों के सिंहला होने के साथ राजनीतिक गठन के वामपंथी हैं। श्रीलंकाई पत्रकारों के लिए युद्ध की अंतिम चरण का सबसे अधिक दुखद था।

अप्रैल 2005 में डी सिवाराम 'ताराकि', एक जाने-माने विश्लेषक और टीकाकार, तमिल राजनीतिक ग्रुप एक बार के नेता, कोलंबो के एक व्यस्त भाग से अगवा कर लिए गए। अगली सुबह गोली लगने के जख्मों से भरा उनका शव मिला। पत्रकारों और मीडिया संस्थान, खासकर जो तमिल राजनीतिक उद्देश्य से जुड़े थे, पर लक्षित हमले आगे आनेवाले महीनों की विशेषता बन चुके थे।

मीडिया समुदायों और प्राधिकरणों के बीच तनाव के लंबे इतिहास में,जनवरी 2009 एक खास मोड़ था। रक्षित प्रमुख युद्धभूमि लाभ के साथ सरकार जीत की मूड में थी। विरोध पर जल्द ही विराम लगा दिया गया। लसान्था विक्रमाटुंगे की हत्या,जोकि संडे लीडर के संपादक और श्रीलंका के प्रसिद्ध आंदोलक पत्रकार थे, उस महीने मीडिया के खिलाफ सबसे बड़ा जघन्य अपराध था।

कोलंबो के सिरसा टीवी स्टूडियो में अग्नि बमबारी और उपालि तेनाकून जोकि सरकारी तानाशाहों के आज्ञाकारी सिंहला दैनिक के संपादक थे,पर क्रूर चाकू हमला जनवरी 2009 में देखे गए थे। सुडार

ओली के संपादक एन विथ्याथरन को 27 फरवरी 2009 को अपहरण की शैली पर एक परिवार की अंत्येष्टि के दौरान छीनकर गिरफ्तार किया गया। और केवल पांच घंटो बाद ही उनकी गिरफ्तारी स्वीकार ली गई थी। उसके कुछ दिनों बाद, रक्षा सचिव एक ऑस्ट्रेलियाई समाचार दल से मिले और संवादाता को चेतावनी दी कि विथ्याथरन के बारे में पूछनेवाले को आतंकवाद के सहअपराधी के रूप में देखा जाएगा। उन्होने कहा 'कि यदि आप विथ्याथरन के बारे में पूछेंगे तो आपने हाथ खून से रंगेंगे क्योकि वो एक आतंकवादी के रूप में जाना जाता था' इस बैठक की रिकॉर्डिंग 11 मार्च को सीबीसी न्यूज चैनल पर प्रसारित की गई। सरकार ने ये दावा किया कि रक्षा सचिव के पास इस बात के सबूत हैं कि जो व्यक्ति हिरासत में लिया गया है, उसकी 20 फरवरी को कोलंबो में हुए हवाई हमले में भूमिका रही है। दो महीने बाद विथ्याथरन बिना किसी शर्त के रिहा कर दिया गया वे पुलिस एजेंसियां जो विथ्याथरन के खिलाफ आरोपों की जांच कर रहीं थी, ने कोर्ट में स्वीकार किया कि उसके किसी भी गलत काम से जुड़े होने के कोई सबूत नहीं है।

पत्रकारों के असुरक्षा के भावना पर आगे जोड़ते हुए जे.एस. तिसैन्यागम का भी मामला है, जोकि मार्च 2008 में गिरफ्तार किए गए और अगस्त 2009 में आतंकवाद निरोधक कानून के अधीन उन्हें 20 साल कैद की सजा सुनाई गई वे अपनी गिरफ्तारी के तीन साल पहले लिखे गए दो लेखों के संबंध में दोषी थे जो पूर्वोत्तर क्षेत्र की एक मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुई, वो पत्रिका अब समाप्त हो चुकी है। उसका अपराध था सैनिकों द्वारा मानवाधिकारों के दुरुपयोग और उन मानवीय संकटों को प्रलेखित करना जिसका सामना युद्ध द्वारा विस्थापित लोग कर रहे थे। एक प्रबल अंतरराष्ट्रीय अभियान के बाद,जनवरी 2010 में तिसैन्यागम को जमानत पर रिहा कर दिया गया और 3 मई को उसे राष्ट्रपति की माफी दे दी गई तबसे उसने देश छोड़ दिया है। तिसैन्यागम अन्य पत्रकारों के लिए उदाहरण पेश हुए कि सरकार की उल्झन में पड़ने पर उन्हें क्या-क्या हो सकता है। देश के तमिल और सिंहलीज अल्पसंख्यकों के बीच का तनाव संयुक्त राष्ट्र के युद्ध के साथ जुड़ गया और इसकी लागत 1 लाख जिंदगियां रहीं जिन्होनें मीडिया पर अपने निशान छोड़े जोकि साम्प्रदायिक और साथ ही राजनीतिक रास्तों के बीच बंटे हुए हैं। लेकिन पत्रकारों का कहना है कि राजपद से और फोन्सेका के बीच की राजनीतिक लड़ाई की तीव्रता ने मीडिया को पक्षपात की नई बुलंदियों तक पहुंचाया। और कुछ पत्रकारों को नए खतरों के बारे में आगाह किया।

हमलों की तीव्रता से मीडिया की स्वतंत्रता के आंदोलन 2009 में डुबते दिखाई देने लगे। कोलंबो में मीडिया केंद्र और सुरक्षित सदन जोकि मीडिया समूहों द्वारा चलाए जा रहे थे और फ्री मीडिया मूवमेंट (FMM) की अध्यक्षता में थे, बंद कर दिए गए। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के उल्लंघन पर प्रेस वक्तव्य कम ही जारी किए जाते थे। राजनीतिज्ञों द्वारा मीडिया निरोधी उद्घोषणा अप्रतिवादित रही क्योंकि राज्य नियंत्रित मीडिया लगातार स्वतंत्र मीडिया संस्थानों और मीडिया कार्यकर्ताओं के खिलाफ आरोपों को संतुलित कर रहा था।

स्थानीय मीडिया की स्वतंत्रता गतिविधि के कमजोर होने के साथ, अन्तर्राष्ट्रीय वकालत 2009 के दौरान श्रीलंका में मीडिया की स्वतंत्रता का समर्थन करने वाला प्रमुख बल बन गया। मई 2009 में IFJ ने दक्षिण एशिया की अपनी सालाना रिपोर्ट 'अग्नि के अधीन' (अंडर फायर), दक्षिण एशिया प्रेस की स्वतंत्रता प्रतिवेदन 2008-2009 प्रकाशित की जोकि श्रीलंका से विस्तारपूर्वक संबंधित था। इसी वर्ष के नवंबर में अंतर्राष्ट्रीय प्रेस स्वतंत्रता मिशन ने श्रीलंका तक IFJ के नेतृत्व में एक चौथा मिशन चलाया,जिसकी रिपोर्ट जनवरी 2010 में प्रकाशित की गई जिसमें मीडिया और सरकार के लिए सिफारिशें स्थापित की गईं थीं।

मार्च, जून और सितंबर 2009 में हुए संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद के सत्रों में कई सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं ने श्रीलंका में मीडिया की स्वतंत्रता के बिगड़ते हालाता का मामला उठाया। यूरोपीय संघ ने मीडिया की स्वतंत्रता और मानवाधिकार के दुरुपयोग की जवाबदेही की बहाली पर जोर डाला जोकि व्यापार रियायतों के नवीनीकरण के लिए पूर्व-शर्त बना जिससे श्रीलंका में यूरोपीय संघ प्रणाली के अधीन वरीयता की सामान्य प्रणाली (जीएसपी) की सुविधा बढ़ी-2009 के अंत तक, राष्ट्रपति चुनाव,स्थानीय संस्थान को राजनीतिक स्थान देने के लिए धन्यवाद, जोकि मीडिया की स्वतंत्रता के लिए चिंतित थे और ताकत एकत्र कर सभी राष्ट्रपति पद के उम्मीदवारों के सुधार के लिए एक कार्यसूची प्रस्तुत की। सरकार नियंत्रित प्रेस परिषद की पुन स्थापना का विरोध करने से श्रीलंका के मीडिया समुदाय को संयुक्त उद्देश्य और कार्रवाई का एक और मौका मिल गया। इस नयी भावना को 'मीडिया की आजादी और सामाजिक दायित्व के लिए कोलंबो की घोषणा' की 10 वीं वर्षगांठ पर रेखांकित किया गया।

सुरक्षा के लिए पत्रकारों का पलायन

कम से कम मीडिया के मनोबल की स्थायी गिरावट में थोड़ा विराम लगा है। कई जाने-माने पत्रकार और मीडिया स्वतंत्रता कार्यकर्ताओं ने अपने जीवन की रक्षा के लिए बिना किसी नतीजे की परवाह किए या फिर ये सोचे बिना कि देश के बाहर वो खुद को या अपने परिवार को संभालने में समर्थ हैं, उन्होनें देश छोड़ दिया। नवगठित समूह श्रीलंका की मीडिया आजादी (MFSL) के अनुसार कम से कम 34 मीडिया कर्मचारियों ने 2009 में देश छोड़ दिया इनमें से 24 ने पश्चिमि राज्यों में राजनीतिक शरण के लिए आवेदन कर दिया बाद में 2010 के शुरुआती आधे साल में 13 मीडिया कर्मियों ने डरकर देश छोड़ दिया कई औरों ने भी छोड़ने की उम्मीद जताई है अगर दमन की स्थिति लगातार बनी रही।

पोद्दला जयन्था 2009 में देश छोड़ने वालों में एक था1 जून की शाम को दो घंटे के लिए कैद कर लिया गया और निर्दयता से उन्हें मारा गया। उन्हें एक पैर में कई गंभीर फ्रैक्चरों से गुजरना पड़ा जोकि उन्हें जिन्दगी भर के लिए अपाहिज बना सकते थे। सुनंदा देशप्रिया,फ्री मीडिया मूवमेंट का पूर्व संयोजक देशनिकाले के बाद जेनेवा में रह रहा है। एक सरकारी वेबसाइट पर देशद्रोही के दोषारोपण और रेडियो शो में भारी भर्त्सना के बाद, उसने भी अपने जीवन की रक्षा के लिए 2009 में श्रीलंका छोड़ दिया।

लंका-ए-न्यूज के संपादक सेन्दारुवन सेनाडीरा ने जनवरी 2010 में प्रगीथ एक्लीगोडा के गायब होने के बाद जल्दी ही देश छोड़ दिया। अब वे भी लंदन में निर्वासन में रह रहें है। पांच सालों में जब वे वेबसाइट चलाते थे, अक्सर पुलिस उनसे पूछताछ करती थी लेकिन कभी भी

एफएमएम कार्यकर्ता लसांथा विक्रमातुंगा के कोफीन को ले के जाते हुए।

की संस्कृति को खत्म कर दिया। एटर्नी जनरल के शब्द खाली वादे निकले और देश से प्रेम करने वाले पत्रकारों का देशवापसी का एक सपना ही रह गया।'

एकता और कार्यनीतियों के लिए मीडिया समुदाय का संघर्ष

मीडिया अधिकार और मीडिया के सिद्धांतों का बचाव करने का मीडिया समुदाय का प्रयास,संपादकों, पत्रकारों और लेखकों के एक समूह द्वारा 1992 में FMM की स्थापना के बाद शुरु हो गया था। कोलंबो में इसका प्रारंभिक सार्वजनिक सभा ने बड़े प्रचार को आकर्षित किया और जातीय तथा सांप्रदायिक हिंसा के दुष्चक्र से बाहर का रास्ता का ढूंढने वालों में उम्मीद जगाई। इस बात ने प्रत्साहित किया कि वे ''सच्चाई जानने के लिए लोगों का अधिकार'' पर देशव्यापी सार्वजनिक सभाएं संगठित करें। इसमें FMM के आंदोलन का मूल सिद्धांत था कि मीडिया किसी विशेष रियायत का दावा नहीं कर रहा,वो केवल लोगों के जानने के अधिकार के लिए बोलना चाहतें है।

1990 का दशक अवसर खो देने वाली और मीडिया स्वतंत्रता आदोलन और सिविल अधिकारों की अपेक्षाओं को धोखा देने वाली अवधि रही। वर्ष, 1994 में एक नई सरकार इस वायदे के साथ चुनी गई कि वो लोकतांत्रिक राजनीति को पुन सुदृढ़ बनाएगी और संघर्ष के लिए समझौतेपूर्ण समाधान खोजेगी। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता उन मुख्य मुद्दों में से एक था जिसपर नई सरकार केन्द्रित थी। मीडिया कानून पर विस्तृत सिफारिशें प्रस्तुत करने और स्वतंत्र भाषण का अधिकार के परिणाम पर अन्य मामलों के लिए चार समितियां नियुक्त की गई। यद्यपि कोई सिफारिशों लागू नहीं की गई। क्योंकि सरकार ने युद्ध प्रयासों का नवीनीकरण किया,कमेटी की रिपोर्ट प्रतिवेदित रही।

अपनी वकालत और अभियानों में, FMM ने मीडिया कानून के तीन मुख्य सुधारों पर ध्यान दिया: सूचना की स्वतंत्रता अधिनियम, राज्य-नियंत्रित मीडिया का लोक सेवा मीडिया में आमन-परिवर्तन, और मानहानि का पर-अपराधिकरण। 2003 में तत्काल प्रधानमंत्री रनिल विक्रमासिंघे ने मानहानि के पर-अपराधिकरण का कानून बनाया और संसद से उसका पारगमन पक्का किया।

स्थानीय प्रेस और अंतर्राष्ट्रीय सहयोगियों के बीच बढ़ी सहकारिता ने श्रीलंका प्रेस संस्थान (SLPI) की स्थापना कराई। जिसने बदल में एक प्रेस आयोग(PCCSL) की मेजबानी की (SLPI) का उद्गम तब हुआ जब श्रीलंका के एडिटर्स गिल्ड और समाचार पत्र ने मीडिया की स्वतंत्रता पर कोलंबो की घोषणा कहे जाने वाले एक घोषणापत्र पर एक तीन दिवसीय सम्मेलन के बाद हस्ताक्षर किए घोषणापत्र ने सरकार के लिए मीडिया कानून में सुधार की कार्यसूची निर्धारित की और प्रिट मीडिया के लिए आचार संहिता का प्रारूप और आत्म-विनियामक तंत्र का प्रस्ताव रखा। श्रीलंका कार्यकरण पत्रकार एसोसिएशन (SLWJ) 2007 में शासनपत्र में शामिल हुआ SLPI और PCCSL 2003 में पंजीकृत

ज्यादा लंबे समय के लिए नहीं रोके गए और ना ही उनपर किसी अपराध का इल्जाम लगा। सेनादीरा ने देश छोड़ने से पहले कहा- 'जब न्यायिक प्रक्रिया चल रही थी तब मुझे कोई चिंता नहीं थी। मैनें कुछ भी गलत नहीं किया था' लेकिन जब उन्होनें प्रगीथ एक्नालिगोडा को पकड़ा, मुझे लग गया कि माहौल बदल गया है और श्रीलंका में वो समय पूर्ण हो गया। मुझे पता था कि कानूनी प्रक्रिया अब नहीं चलेगी। मेरे पास तीन विकल्प थे। या मैं वेबसाइट छोड़ दूं, या सरकार से लड़ूं या फिर गायब हो जाऊं। मैं हार महसूस नहीं कर रही थी लेकिन मैं परेशान हो चुकी थी। मुझे पता था कि कानूनी प्रक्रिया अब नहीं चलेगी।

कुछ पत्रकार पूरी तरह छोड़कर जा चुके थे। कुछ आग के ठंडा होने का इंतजार कर रहे थे कि वे घर वापस लौट सकें। मार्च 2010 में एटर्नी जनरल मोहन पियरिस कुछ निर्वासित पत्रकारों को वापस लौटने के लिए उकसा रहे थे जैसा कि देश का पुनर्निर्माण करने के लिए उन्हें आवश्यकता थी। उन्होनें कहा कि पत्रकारों का देश से बाहर रहना और सरकार पर वार करना फायदेमंद नहीं है। 'उन्हें वापस आना चाहिए, हमारे साथ काम करना चाहिए और फिर से अपनी संरचना बनानी चाहिए जिससे हम सात काम कर सकें और एक दूसरे को सम्मान दे सकें'। पियरिस ने निर्वासित पत्रकारों को श्रीलंका लौटने पर सुरक्षा का विश्वास भी दिलाया।

तथापि, श्रीलंका में लोकतंत्र के लिए पत्रकारों (JDS) ने पियरिस के भरोसे का स्वागत किया और उनसे अनुरोध किया कि मीडिया की स्वतंत्रता के लिए अपनी गंभीरता को साबित करने के तत्काल कदम उठाएं। वापसी की इच्छा रखने वाले निर्वासी पत्रकारों को आश्वासन देने की तरफ प्रारंभक कदम उठाते हुए पियरिस ने पत्रकारों को अपने अच्छे इरादों को व्यक्त किया जोकि एक्नेलिगोडा के लिए थे और पत्रकारों के खिलाफ कई अनसुलझे अपराधों की जांच की आगे बढ़ाने का जोकि महिंदा राजपद से के शासन के दौरान हुए थे और उनके जिम्मेदार लोगों को पुस्तकों तक लाने काआश्वासन दिया। 'जबतक सरकार ने श्रीलंका में काम करने वाले पत्रकारों के डर को कम करने के लिए तत्काल कदम उठाए और दण्डाभाव

हुए और उत्तरी यूरोप के देशों के संवादाताओं से उन्हें महत्वपूर्ण वित्तीय सहायता मिली। 2002 तक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ साझेदारी,जिसमें भी शामिल था, ने एक ठोस रूप अर्जित कर लिया था। 2000 के प्रारंभ में IFJ और FMM ने श्रीलंका में चुनौतियों का सामना करते पत्रकारों पर दो दिवसीय सम्मेलन कराया वे पत्रकार जो सांप्रदायिक वफादारियों द्वारा विभाजित किए गए थे, दो महत्वपूर्ण प्राथमिकताओं पर चर्चा के लिए साथ आए पत्रकारों के अधिकार को सुरक्षित रखने की एकता और अच्छी पत्रकारिता को बढ़ावा जो लोगों के जानने के अधिकार के लिए चौकस हो.. इसने IFJ और श्रीलंकाई साथी संगठनों के लिए व्यापक और लंबी अवधि की योजनाओं के लिए आधार तैयार किया अगस्त 2003 में कई भाषाओं और जातीय गुटों का प्रतिनिधित्व करने वाले मीडिया संगठन, अधिक जवाबदेह और निष्पक्ष मीडिया के लिए साथ काम करने के प्रयास में एक दो दिवसीय सम्मेलन मिले। यह सम्मेलन एक महत्वपूर्ण समय पर हुआ, जब शांति वार्ता का कार्यक्रम बनाया जा रहा था। सभी भाग लेने वाले संगठनों ने IFJ का कोड राष्ट्रीय बेंचमार्क के रूप में स्वीकार किया और सदस्यों और संबद्ध लोगों के बीच इसे आगे बढ़ाने के लिए सहमत हो गए। पत्रकार संगठनों को साथ लोने वाला एक कार्यक्रम शुरू-शुरू में विरोधी और संवेदनशील पत्रकारिता के चलाता था। जोकि 2004 में कार्यान्वित किया गया था..ये मीडिया-में-संघर्ष कार्यक्रमों के अधीन संचालित होने वाले विचार-विमर्श का पालन करता था। और इस परिदृश्य को विस्तृत किए जाने की जरूरत है जिससे लोक हित के लिए कार्यरत पत्रकारित को इसमें शामिल किया जा सके।

श्रीलंका के पत्रकार संगठन उस समय स्थानीय सिविल सामाजिक समूह के साथ विचार-विमर्श में लगे थे और 2004 में वैकल्पिक नीति के केन्द्र (CPA), कोलंबो में एक अनुसंधान और वकालती भाग, सभी विचारों को साथ मिलाया जो लोक सेवा मीडिया के कानून के प्रारूप में विलय हो गया। उस प्रारूप को विक्रमासिंघे सरकार को प्रस्तुत किया गया। लेकिन मध्यावधि चुनाव हार जाने के बाद इस पहल ने गति खो दी।

अक्टूबर 2005 में FMM, SLWJA और संघीकृत मीडिया कर्मचारी मजदूर संघ (FMET), दो दूसरे पत्रकार संगठन-श्रीलंका तमिल मीडिया गठबंधन (SLTMA) और श्रीलंका मुस्लिम मीडिया मंच (SLMMF)– और केन्द्रीय थोलांगमुआ के 22 अन्य प्रांतीय पत्रकारों संगठन के साथ जुड़ गए। और वहां उन्होनें एक लोकतांत्रिक और एकाधिक मीडिया संस्कृति और श्रीलंका में मीडिया और पत्रकारिता के लिए सामाजिक और व्यवसायिक अधिकारों के लिए एक वाद-विवाद किया और मीडिया सनद को अपनाया। राष्ट्रीय स्तर पर श्रीलंका के पांच मीडिया संगठनों (SLz के बाद) इस सनद के आधार पर अपनी एकता को मजबूत किया और कार्यक्रम और गतिविधियों का एक संयुक्त अभियान लागू करने पर सहमत हो गए। 2004-2006 में SLz द्वारा संचालित लोक सेवा पत्रकारिता कार्यक्रम अच्छी पत्रकारिता को बढावा देने में और मीडिया व्यवसायियों के लिए राष्ट्रव्यापी तंत्र बनाने में एक महत्वपूर्ण मोड़ बना। 2006 में लोक सेवा पत्रकारिता और उल्लेखित उदाहरण को मान्यता देने वाले मूल्यों का उत्सव मनाने वाला पहला मीडिया पुरस्कार समारोह आयोजित किया गया। अगले दो वर्षों तक यह पुरस्कार कार्यक्रम जारी रहा और सामाजिक विविधता व उदारता पर की गई पत्रकारिता को स्वीकार किया 2008 में लोक सेवा पत्रकारिता पुरस्कार के साथ संयोजित एक मानव अधिकार पुरस्कार संचालित किया गया। वहां पर श्रीलंका के भाषाई और क्षेत्रीय विविधता को मान्यता देने वाली कई पुरस्कार श्रेणियां थीं। जिससे द्वीप के सभी जगहों के पत्रकार भागीदारी और उपलब्धि की भावना महसूस कर सकें। आने वाले वर्षों में संघ की एकता, श्रीलंका के अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए एक प्रचार थी।

युद्ध के अंत के बाद थोड़ी-सी राहत

युद्ध के सबसे बुरे वक्त के दौरान अपने सालों से चल रहे आंदोलन के जरिए मीडिया समुदाय के बीच एक संकीर्ण जन समुदाय बनाना संघ का मुख्य उद्देश्य था। प्रशिक्षण कार्यक्रम और पत्रकारिता के विभिन्न पहलुओं के निर्माण के लिए कार्यशालाओं ने इस संकीर्ण समुदाय के निर्माण में सहयोग किया। मीडिया कानून सुधार, नैतिक पत्रकारिता और पत्रकारों के अधिकार इस प्रक्रिया के तीन स्तंभ थे। लेकिन इस कार्यक्रम में सिविल समाज को लगातार सक्रिय रूप से शामिल करना- और प्राय एक सत-विरोधात्मक-प्राधिकारियों के साथ वादा, पूरी तरह क्षतिग्रस्त हो गया जब सिविल वार्ता का माहौल 2005 में सक्रिय सैन्य संचालन के साथ बिखर गया। सक्रियता और संघर्ष के इस चरण का आंकलन करने में, इस रिपोर्ट तैयार करने में किए गए अनुदार्शनिक अध्ययन से अनेक प्रकार के परिप्रेक्ष्य उभर कर सामने आए है। जोकि सर्वाधिक विख्यात भागीदारों के साक्षात्कारों की श्रेणी पर आधारित है।

जाफना में रहने वाले तमिल के एक पूर्व संपादक,विचार करते हैं कि वर्ष 2005 में युद्ध के अंतिम चरण में SLz की एकता और संघर्ष की रणनीति का बनाने में प्रमुख योगदान रहा है। लेकिन मीडिया को घेरे हुए डर का शक्तिशाली होना पत्रकारों को निष्पक्ष और संतुलित रिपोर्टिंग करने पर रोक लगाने लगा जिसे उन्होनें 2005 के मीडिया चार्टर में वचनबद्ध किया था। एक पत्रकारिता प्रशिक्षक,जिसने मीडिया के समाचार प्रसारण में संपादक के रूप में काम किया था, तर्क दिया हैं कि पत्रकारों और मीडिया कर्मियों के बीच समझौता कराने में SLz का प्रयास सफल रहा था, ऐसे तो किसी भी विवाद के अनेक पक्ष होते हैं लेकिन उनकी प्रमुख चुनौती हर पक्ष को रिपोर्ट करने की होती है।

इस संबंध में, अंतर्राष्ट्रीय समर्थन के साथ लिए गए SLz कार्यक्रम युद्ध पर मीडिया के विचार-विमर्श को बदलने में सहायक रहा प्रशिक्षक कहते हैं कि परिवर्तन को व्यक्त होने में समय लगता है। उदाहरण में, SLz के कार्य में निहित परिवर्तन की संभावनाएं सरकार के दमन के सक्रिय कार्यक्रम द्वारा बेकार कर दी गईं।

कोलंबो के दूसरे मीडिया आंदलनकर्ता और प्रशिक्षक विचार करते हैं कि मीडिया उन्मूलन कार्यान्वित करने के सुनियोजित और क्रमबद्ध तरीके को इस शक्तिशाली भय का सामना करना पड़ा कि पत्रकारों में नया बोध युद्ध शिविरों का रूख करता है। "SLz द्वारा लागू किए गए कार्यक्रमों ने देश में मीडिया भाषण को बदल दिया...किसी भी रिपोर्ट की नैतिक विशेषता अब पत्रकारों के बीच वार्ता की विषय सामग्री बन गई। संघर्ष, मानवाधिकार, लिंग और अल्पसंख्यकों के मामले पर पत्रकारिता में परिवर्तन के लिए किए गए SLz के प्रयासों ने श्रीलंका में मीडिया संस्कृति पर एक स्थायी चिन्ह लगा दिया"।

मव्बिमा: सबकी आवाज़ उठाने के लिए निशाने पर

नवम्बर 2006 में श्रीलंका पुलिस के आतंकवाद जाच विभाग ने सिंहाला साप्ताहिक मव्बिमा में काम करने वाली 23 साल की फ्रीलांस तमिल पत्रकार मुनुसामी परमेश्वरी को गिरफ्तार कर लिया गया। स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय मीडिया अधिकार संगठनों के कड़े विरोध के चलते 4 महीने बाद उन्हें रिहा किया गया। इसके पहले राजकीय मीडिया और मंत्रियों की बदनाम करने की साजिश वो झेल चुकी थीं।

राजनीतिक संरक्षण पाए हुए भूमिगत गैंगों के अपहरण रैकेट पर विस्तृत रिपोर्टिंग का बदला लेने के लिए उसे गिरफ्तार किया गया। ये श्रीलंका में गृहयुद्ध के आखिरी दौर में नागरिकों के मानवाधिकार उल्लंघन के तमाम तरीकों में से एक था। इस गिरफ्तारी से कभी राष्ट्रपति महिंदा राजपक्षे के राजनीतिक करीबी रहे तिरन अल्लेस के प्रकाशकों को साफ़ सन्देश दिया गया जिन्होंने राष्ट्रपति के बार बार कहे जाने के बावजूद अपने नए अखबार की स्वतंत्र सम्पादकीय नीति रखी। वास्तव में मव्बिमा की खबर और सम्पादकीय नीति में मानवाधिकार के मुद्दों को तरजीह दी गई जिसे इस द्वीप पर नस्लवाद की खाई को पाटने का सबसे विश्वसनीय कदम माना गया। थोड़े समय में प्रसार संख्या में ये सिंहाला अख़बारों में दूसरे नंबर का अख़बार बन गया।

फरवरी 2007 में मव्बिमा और इसके सहयोगी अंग्रेजी अख़बार के सम्पादकीय निदेशकों को राष्ट्रपति और उनके राजनीतिक सहयोगियों के प्रतिकूल स्तम्भ छापने पर जान से मारने की धमकी दी गई। माना जाता है कि राष्ट्रपति ने अख़बारों को चलाने वाले स्टैण्डर्ड न्यूज़ पेपर्स को विज्ञापन न देने के लिए कई विज्ञापनदाताओं पर दबाव डाला तमिल उग्रवादियों को धन देने के आरोप में टीआईडी ने फरवरी 2007 में प्रकाशन के वित्त निदेशक को गिरफ्तार कर लिया। 71 दिनों तक असहनीय अपमानजनक हालातों में उन्हें हिरासत में रखा गया।

टीआईडी के दफ्तर में अल्लेस को सप्ताह में 2-3 बार बयान दर्ज कराने के लिए बुलाया जाता रहा। कई बार दिनभर उससे लगातार पूछताछ होती रही। 5 मार्च 2007 को टीआईडी के अधिकारियों ने उनके व्यापारिक दफ्तर पर छापा मार कर सभी वित्तीय दस्तावेज़ और पत्राचार को जब्त कर लिया। एक दिन बाद सरकार ने उत्तर और पूरब में मोबाइल फोन के वितरण का काम करने वाली अल्लेस के बिजनेस समूह की कंपनी को निलंबित कर दिया। दो दिन बाद सरकार ने अखबार और सभी सम्बंधित कंपनियों के खातों को बंद कर दिया।

24 मार्च 2007 को मव्बिमा और सन्डे स्टैण्डर्ड के आखिरी अंक छापे गए। दोनों का प्रकाशन एक साल से भी कम हो सका। मई 2007 में जब तक गिरफ्तारी नहीं हुई अल्लेस को पूछताछ के लिए बुलाया जाता रहा और उनका शोषण होता रहा। उनपर कोई आरोप नहीं लगाया गया और 2 हफ्ते के भीतर ही न्यायिक आदेश पर उन्हें रिहा कर दिया गया।

SLWJA का एक कर्मचारी विचार करता है कि SLz क्रियाओं के अधीन उत्पन्न मीडिया साहित्य बदले माहौल में भी एक महत्वपूर्ण साधन रहेगा। सक्रिय मीडिया दमन की स्थिति जिसने 2005 में युद्ध के पुनर्ग्रहण का अनुसरण किया था, ने एक अस्थायी ग्रहण का समय देखा कि किस तरह साहित्य लिखा और उसका विचार-विमर्श किया जा रहा है। लेकिन इसकी वृद्धि की क्षमता इस बात का विश्वास दिला देगी कि जब भी पत्रकारों को देश के इतिहास में नइ स्थिति का सामना करना पड़ेगा। इसका उदगम किया जा सकता है।

बाधाओं और असफलताओं का मूल्यांकन

ये कहना कि 2005 में शुरू हुई मीडिया दमन का सामना करने में SLz फेल हो गई, एक पूर्ण स्पष्टीकरण के लिए काफी नहीं होगा। ये भी जरूरी है कि डर के नए माहौल पर उसे खत्म कर देने की प्रतिक्रिया क्यों कम और फेल साबित हुई। दो मानकों का खास उल्लेख जरूरी है पत्रकारों और मीडिया उद्योग के बीच भाईचारे की समझ की अनुपस्थिति और अधिकारियों के अंतर्राष्ट्रीय भाईचारे के कार्य को वर्णन करने की क्षमता। जैसा कि श्रीलंका के आतंकवाद से लड़ने के प्रयास पर निशाना अनुचित है।

शुरू होने के बाद से SLPI मीडिया स्वतंत्रता की वकालत और व्यवसायिक मानकों की उन्नति के लिए सार्थक मंच की तरह उभरा। तथापि श्रीलंका के प्रधान मीडिया संगठन- SLPI के सभी साझेदार-मानदंडो में निरंतर मतभेद जो उसके कार्यों को संचालित करता है-स्पष्टतया, 2007 में मॉबिना के पत्रकार मनुसामी परमेश्वरी के उत्पीड़न पर SLPI और संपादक निकाय मानने के ढंग से प्रतिक्रिया देने में नाकाम रहे और अनुसरण करने वाली समाचार कंपनी और उसके मालिकों के मानसिक उत्पीड़न के खिलाफ दृढ़ नहीं खड़े रह सके, दो समाचारपत्रों के समापन में जब संडे लीडर का प्रिंटिग प्रेस नवंबर 2007 में आगजनी का आक्रमण झेल रहा था। SLPI ने प्रेस आजादी के सिद्धांतो के लिए फिर से सहायक ढंग से प्रतिक्रिया नहीं दी। राजनीतिक इमानदारी और अंधभक्ति सामयिक प्रतिक्रिया के रास्ते में आने लगी जिसने श्रीलंकाई अधिकारियों पर उन जिम्मेदार लोगों को सामने लाने और उनपर कारण बताने का दबाव डाला होता।

SLPI ने इन दो हमलों की प्रतिक्रिया उद्देश्य के अर्थ से दी जोकि पहले छूट गई थी। उस वर्ष अक्टूबर में श्रीलंका के अंतर्राष्ट्रीय प्रेस स्वतंत्रता मिशन के सदस्यों के साथ बैठक, श्रीलंका के बहुत पुराने समाचारपत्र के संपादक उसके लिए स्पष्टवादी थे जिसे उन्होंने प्रेस पर हो रहे हमलों की पैरेदार और अस्थायी प्रतिक्रिया के मुख्य कारण के रूप में देखा। चूंकि शुरूआती वर्षों में हमले आम हो गए थे, उन्होने कहा-श्रीलंका के नैतिक अलेपसंख्यकों के सदस्यों को शामिल करने के लिए वे सैद्धांतिक रूप से अग्रसर हुए। जैसा कि ये सब लगातार चल रहे सिविल संघर्ष के समानान्तर नुकसान के रूप में देखा जा रहा था प्रेस स्वतंत्रता पर लक्षित हमले की तरह। इस तरह जब नोयारह और परेरा पर हमला हुआ, सच्चाई साफ हो गई कि प्रेस स्वतंत्रता ही उद्देश्य था जिसके लिए पीड़ित की नैतिक पहचान या संबंधित संस्था की राजनीतिक परिपेक्ष्य का लिहाज किए बिना, एक योग्य लड़ाई लड़ी जा रही थी।

निष्कर्ष और सिफारिशें

इस शोध परियोजना के तहत विभिन्न देशों के पत्रकारों को सामूहिक कार्रवाई का अनुभव भिन्न-भिन्न है। लेकिन इनमें अनेक समानता भी है और इन्हीं समानताओं की पहचान ही भविष्य की रणनीति बनाने में मददगार साबित होगी, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों स्तर पर।

पहला सबक यह है कि पत्रकारों के सामूहिक संघर्ष का तब अधिक प्रभाव पड़ता है जब वो ऐसे आंदोलन का हिस्सा हों, जो व्यापक समाज से जुड़ा हैं। यह एक स्पष्ट निष्कर्ष है, हालांकि ये कठिन है। अब तक ये दो ही बार देखा गया है। वर्ष 2006 में नेपाल के राजत्रंत तानाशाही के खिलाफ आंदोलन और वर्ष 2008 में पकिस्तान की सैन्य निरंकुशता के खिलाफ सफल अभियान के रूप में। पत्रकार संगठनों के लिए ये चुनौती है कि वो व्यापक समाज के साथ संबद्ध रहें। क्योंकि भविष्य में ये किसी भी काम के लिए मददगार साबित हो सकता है।

स्थानीय अभियान में अंतर्राष्ट्रीय नेटवर्किंग कारगर साबित हुई है क्योंकि वो उसे कई गुना शक्तिशाली बना देती है। लेकिन अंतर्राष्ट्रीय नेटवर्क त्वरित सूचना प्रवाह के संदर्भ में पूरा किया जाना चाहिए। स्थानीय संस्था को अंतर्राष्ट्रीय समर्थन और एकजुटता के लिए अपने आप को स्पष्ट रखना जरुरी है। वैश्विक संगठनों के लिए भी जरुरी है कि वो कोई कदम उठाने से पहले प्रारंभिक जानकारियों का मूल्यांकन कर ले।

एक संदेश अंर्राष्ट्रीय दाता संगठनों के लिए भी है। ये संगठन अक्सर प्रादेशिक सीमाओं को ध्यान में रखकर अपना समर्थन देते हैं। लेकिन इन्हें ध्यान रखना चाहिए कि दक्षित एशिया की तरह जटिल क्षेत्रों का अपना साझा इतिहास और विरासत हैं। दक्षिक एशिया के क्षेत्र जैसे नेपाल के तराई, पाकिस्तान के खैबर पखन्तूनख्वां और उत्तर पूर्व भारत की समस्याओं का कारण है केंद्रीयकरण और सीमापार रिश्तों पर नियंत्रण।

अनुभवों की साझेदारी जब पैरवी और वकालत में सफल रही है या जब सफल नहीं भी रही है तब भी वो लंबी अवधि में कारगर साबित होती है। कुछ यूनियनों और दक्षिण एशिया में पत्रकारों के संगठनों को बड़ी कामयाबी मिली है। उदाहरण के तौर पर पत्रकारों की रक्षा के लिए, मीडिया संबंधित कानून में सिफारिशें करने और संघर्ष के पीड़ितों के मुआवज़े के लिए सरकार पर दबाव बनाने में यूनियनों ने प्रभावी कदम उठाया है। शुरुआती सफलता के बाद भी इन कार्यों की निगरानी जरुरी है क्योंकि कई बार क्रियान्वयन ढीला पड़ जाता है।

क्योंकि दाता एजेंसी और व्यापक नागरिक समाज से धन प्रतिबद्धता की बात होती है इसलिए यूनियनों को पारदर्शिता रखनी चाहिए।

मीडिया नीति और कानून एक ऐसा क्षेत्र है जहां यूनियन सक्रीय हैं। हालांकि ज्यादातर देशों में पहले प्रसारण मीडिया पर सरकारी एकाधिकार था। लेकिन अब स्वतंत्र मीडिया की बढोत्तरी के साथ विनियमन और नैतिक आचरण प्रासंगिक हो गया है।

भारत का अनुभव ये साबित करता है कि निजी क्षेत्र में अक्सर सार्वजनिक हित और गुणवता का ध्यान नहीं रखा जाता। जैसा कि श्रीलंका मामले में देखा गया है कि निजी चैनल, सरकारी चैनल के दुरुपयोग से होने वाले खतरों को कम नहीं करता।

नेपाल में पत्रकार यूनियनों की ये सफलता है कि उन्होंने जोर दिया कि राष्ट्रीय प्रसारण अधिनियम 1992 में बदलाव होना चाहिए और संस्थागत स्वायत्ता की अनुमति होनी चाहिए साथ ही प्रसारण लाइसेंस देने में सरकार के अधिकार में संशोधन होना चाहिए लेकिन यहाँ फिर से, सिद्धांत रूप में तो स्वीकृति मिल गई लेकिन उसका क्रियान्वयन नहीं हो पाया इस रिपोर्ट में जिन देशों को शामिल किया गया है वहां प्रसारण मीडिया की अपार क्षमता है लेकिन नेपाल और कुछ हद तक बांग्लादेश को छोड़कर दूसरे देशों में समुदाय प्रसारण क्षेत्र से संबंधित कानून प्रतिबंधक बने हुए हैं।

यूनियनों को समुदाय प्रसारण में ज्यादा से ज़्यादा नागरिक समाज की भागीदारी सुनिश्चित करना चाहिए साथ ही अयोग्य संस्थाओं को एक ''नकारात्मक सूची'' में निर्देशित किया जाना चाहिए इसी समय कानून में संशोधन करके सरकार के पंजीकरण और लाइसेंस शक्ति पर कटौती करनी चाहिए अगर आवश्यक है तो ये संशोधन निष्पक्ष और कानूनी मापदंडों के अनुसार अधिनिर्णय के अधीन होना चाहिए।

मीडिया संगठनों और यूनियनों को नैतिकता और पेशेवर पत्रकारिता के दिशा निर्देशों को संहिताबद्ध करना चाहिए। इस रिपोर्ट में शामिल देशों में सभी यूनियनों ने इस संबंध में महत्वपूर्ण प्रारंभिक सफलताएं प्राप्त की हैं। भारत सरकार ने हाल ही में कानून के द्वारा मीडिया विनियमन की आवश्यकता पर जोर दिया है लेकिन भारत की शक्तिशाली निजी प्रसारण लॉबी अब तक इस विधायी मंशा से ध्यान हटाने में कामयाब रही है और अपनी आत्म-नियमन की पहल की घोषणा की है यूनियनों से इस मामले में कोई मशवरा नहीं किया गया और वो अन्य मामलों में व्यस्त रहे नेपाल में यूनियनों के लिए नैतिक मुद्दों में एक व्यापक बदलाव के लिए एक प्रारंभिक बिंदु के रूप में रेडियो ऑपरेटरों के लिए आचार संहिता में संशोधन के मसौदे का प्रयास किया गया है।

सभी पांच देशों में, अक्सर यूनियनों के बीच आम सहमति नहीं होने के कारण विफलता देखी गई है। इस संबंध में ये आवश्यक है कि सभी यूनियनों को लोकतांत्रिक मूल्यों को संस्थागत करें और राजनीतिक दल और उनके सहयोगी से साथ ही निहित व्यापारिक हितों के दबाव में ना आएं। लेकिन एक सच ये भी है कि भूमिगत समूहों और अपराधियों का डर भी मीडिया पर हावी रहता है।

इन खतरों से बचाव के लिए जरुरी है कि पत्रकार एक आचार संहिता की घोषणा करें, उसका पालन करें और उनमें एकता हो।

पत्रकार और मीडियाकर्मी की हत्या,उन पर हमला और अपहरण सभी पांच देशों में आम है। लेकिन ऐसी घटनाएं पत्रकार समुदाय को पास ले आती हैं और उन्हें इस बात के लिए एकजुट करती हैं कि आरोपियों को सज़ा मिलें। लेकिन दक्षिण एशिया में दंडाभाव एक संस्कृति का हिस्सा बन गया है। और मीडिया का ये कर्तव्य बनता है कि वो ऐसा होने से रोके। पत्रकार सगंठनों को ये दबाव बनाए रखना चाहिए कि जो मीडिया अधिकारों को उल्लंघन होता है उसमें जांच होनी चाहिए और दोषियों को जल्द सज़ा भी मिलनी चाहिए। अतीत में भी लंबे समय तक आंदोलन किया गया है और काम भी बंद किया है, लेकिन इससे बहुत सीमित सफलता मिली है। लेकिन पत्रकारों के विरुद्ध अपराधों के लिए जवाबदेही की प्रक्रिया पर निरंतर निगरानी की कमी देखी गई है। दण्डाभाव को खत्म करना दक्षिण एशिया के लिए महत्वपूर्ण है।

सभी दक्षिण एशिया के मीडिया पेशेवरों को उस बहस में हिस्सा लेने की जरुरत है जिसमें इस बात पर जोर दिया जाए कि सरकारी मीडिया संसाधनों को सरकारी नियंत्रण के बजाय जनता के नियंत्रण में हस्तांतरित किया जाए। पारंपरिक सोच ये है कि सरकार सार्वजनिक हित में काम करती है, ये सोच बदलने की जरुरत है। ये करने के लिए जरुरी है कि सार्वजनिक सेवा प्रसारण पर सरकार का स्वामित्व खत्म हो और स्वायत्त ट्रस्ट के हाथ में बागडोर हो।

इस शोध कार्य में उल्लेख किया गया है कि सभी पांच देशों में पत्रकारों और मीडिया कार्यकर्ताओं के लिए एक राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक शिक्षा एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाएं। जिसमें मीडिया मालिक, प्रबंधक और यूनियनों द्वारा वित्तीय संसाधनों के साथ नैतिक समर्थन दिया जाए। इस प्रक्रिया में बुनियादी पाठ्यक्रम, पेशेवर कौशल, प्रबंधन और व्यापार की योजना विकसित करनी चाहिए। प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए सभी देशों में बहिष्कृत समूहों की अधिक से अधिक भागीदारी सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।

अकसर, राष्ट्रीय राजधानियों की यूनियनों और दूर-दराज के क्षेत्रों के पत्रकार, जो चुनौतियों का सामना कर रहे हैं उनके बीच संबंध कमजोर है। ये जरुरी है कि दोनों के बीच कड़ियां मजबूत हों, क्योंकि जब तक महानगरों में स्थित यूनियनों इस बारे में चर्चा नहीं करते तब तक दूर के क्षेत्रों को इसका लाभ नहीं मिलेगा।

यूनियन में युवा पत्रकारों और मीडिया कर्मियों को शामिल करना चाहिए और उन्हें समझाना चाहिए की पत्रकार यूनियन का पत्रकार हितों के लिए बहुत पुराना इतिहास रहा है। यह इन सभी देशों में मीडिया की आजादी के भविष्य में एक महत्वपूर्ण निवेश है।

जाहिर तौर पर यूनियनों को अपनी पारंपरिक भूमिका निभाना चाहिए जिसमें वो मीडियाकर्मियों के लिए बेहतर वेतन और काम करने की स्थिति में सुधार की वकालत करती रहे।

इस बुनियादी मुद्दे पर पाकिस्तान, बांग्लादेश और भारत में जहां संवैधानिक वेतन बोर्डों के माध्यम से वेतन निर्धारण की प्रक्रिया है वहां पुनर्मूल्यांकन की जरूरत है। साथ ही एक अभियान की भी जरुरत है जो मज़दूरों के अधिकारों के प्रति नियोक्ता का नज़रिया बदले।

व्यवसाय में महिलाओं की भागीदारी बढ़ रही है, और ये खुशी की बात है कि मीडिया यूनियनों में भी उनकी भागीदारी बढ़ रही है। यूनियन को ये कोशिश करनी चाहिए की महिलाएं यूनियनों में शामिल हों और उन्हें नेतृत्व वाले पदों के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। यूनियनों को सकारात्मक कार्रवाई करनी चाहिए जिससे महिला मुद्दों पर ध्यान दिया जाए और ज्यादा से ज़्यादा महिला प्रतिभागियों को आकर्षित किया जाए। यूनियनों को अपनी संरचना के लिए विचार करना चाहिए क्योंकि डिजिटल प्रौद्योगिकी एक महत्वपूर्ण परिवर्तन लेकर आई है।

''डिजिटल डिवाइड'' के बावजूद दक्षिण एशियाई देशों में मोबाइल टेलीफोन ने संचार की संभावनाएं बढ़ा दी हैं। जो समाचार एकत्र करने और प्रसार की प्रक्रिया में भाग लेने वालों की एक बड़ी रेंज के लिए अनुमति देता है। इस प्रक्रिया में लोग तेजी से खुद को हितधारक के रुप में देखने लगे हैं। इन विचारों की विविधता को मीडिया संवाद में शामिल करना एक चुनौती है। संघर्ष के क्षेत्रों में दूसरों की आवाज़ को दबाया जाता है जो एक चुनौती खड़ी करती है, जो खतरनाक भी हो सकती है, लेकिन इसे अगर गंभीरता से लिया जाए तो उसका पुरस्कार कई गुना होता है।

अंत में, सभी यूनियनों को पूर्ण पारदर्शिता और जवाबदेही की नीतियों को अपनाना चाहिए। वार्षिक रिपोर्ट को संकलित कर उसे सार्वजनिक कर दिया जाना चाहिए, जिसमें पेशेवर कार्यक्रम, सक्रियता और वित्तीय लेन-देन का ब्यौरा हो। इस संबंध में सभी संघों को संचार के उभरते और नवीनत रूप विशेष तौर से मोबाइल फोन, एसएमएस का लाभ उठाना चाहिए। खासतौर से वहां जहां इंटरनेट कनेक्टिविटी सीमित हो। ये कुछ उपाय हैं जो अलगाव और भौगोलिक बाधाओं को पार करने में मददगार साबित हो सकते हैं।